तुलसी-शोध

(विहंगावलोकन)

डा० वीरेन्द्रपाल श्रीवास्तव

तुलसी-शोध

(विहंगावलोकन)

समीक्षार्थ

डा० वीरेन्द्रपाल श्रीवास्तव
एम. ए., एल-टी., पी-एच.डी.
शिक्षा विभाग, मध्यप्रदेश

प्रकाशक—
मानस संघ, रामवन
(सतना, म० प्र०)

प्रथमावृत्ति १०८०
दिसम्बर, १९६८
मूल्य २.०० दो रुपया

मुद्रक—
नीरज जैन
सुषमा प्रेस, सतना.

मानस चतुश्शती प्रकाशन

निवेदन

यह हमारा परम सौभाग्य है कि हमें रामचरित मानस की चतुश्शती मनाने का सुअवसर मिलने वाला है। स्वयं गोस्वामी जी ने लिखा है—

सम्वत् सोरह सै एकतीसा
करउँ कथा हरि पद धरि सीसा।
नौमी भौमवार मधु मासा
अवधपुरी यह चरित प्रकासा॥

आगामी २०३१ में ४०० वर्ष पूर्ण होंगे। इसका उत्सव बड़े समारोह से समस्त देश में मनाया जाना चाहिये। सभी स्थानों को अपनी अपनी योजना बनाकर उसकी सफलता के उद्योग में लग जाना चाहिये।

रामवन की अपनी योजना बन गई है। बीच के पाँच वर्षों में हम रामवन को गोस्वामी जी के गौरव के अनुरूप एक तुलसी तीर्थ बना देना चाहते हैं। योजना के प्रथम वर्ष में ही सफलता के अच्छे लक्षण दिखने लगे हैं।

हमारी योजना का एक प्रमुख अंग है मूर्त्त मानस निर्माण। श्री हनुमत्तीर्थ के अन्तर्गत इस क्रम से किष्किन्धाकाण्ड लेखन प्रारम्भ किया जा चुका है। दूसरा प्रमुख अंग है तुलसी शोध

पीठ स्थापन। इसके लिये समस्त तुलसी साहित्य संग्रह का उद्योग किया जा रहा है। तुलसी उद्यान, तुलसी उपवन, यात्री-शाला, तुलसी रंगमंच आदि योजना के अन्य अंग हैं।

तुलसी साहित्य प्रकाशन को भी एक प्रमुख अंग माना जा रहा है। इस सम्बन्ध में नीचे लिखे अनुसार प्रकाशन का निश्चय हुआ है!

१—नया तुलसी साहित्य
२—अपना पुराना साहित्य (पुनर्मुद्रण)
३—मानस आदि की पुरानी टीकायें (पुनर्मुद्रण)
४—४०० श्रद्धांजलियों का ग्रन्थ

प्रकाशन योजना के अन्तर्गत यह छठवीं पुस्तक प्रकाशित करने में हमें विशेष हर्ष है। तुलसी और उनके साहित्य के विविध अंगों पर हुये ३७ शोधों का संक्षिप्त विवरण इसमें जा रहा है। विद्वान लेखक के शोध प्रबन्ध में इनका ही विवरण सम्मिलित हुआ है। बाद में नीचे लिखे शोधों का और भी पता चला पर उनके विवरण मिल नहीं सके। अतः उनका उल्लेख मात्र नीचे किया जा रहा है।

१—गोस्वामी जी का मानव चरित्र चित्रण
डॉ० देवीदत्त अवस्थी

२—गोस्वामी तुलसीदास के नाम संकेतों एवं कथा संकेतों का अध्ययन।
डॉ० प्रेमलता दुबे

३—रामचरित मानस में निरूपित मानवीय मूल्य
डॉ० श्रीचन्द्र

४—महाकवि के काव्यादिको एवं विश्व विधाओं का अनुशीलन
डॉ० कुं० उषा मिश्र

५—मानस की टीकाओं का समालोचनात्मक अध्ययन
डॉ० त्रिभुवननाथ चौबे गोरखपुर विश्व विद्यालय

६—मानस अध्यात्म रामायण एवं बाल्मीकीय रामायण के नारी पात्रों का तुलनात्मक अध्ययन
डॉ० श्रीमती तुलसी मिश्र गोरखपुर विश्व विद्यालय

७—मध्यकालीन सांस्कृतिक पृष्ठ भूमि पर तुलसी का काव्य चिंतन
डॉ० रामप्रतिपाल मिश्र विक्रम वि० उज्जैन

अपनी जानकारी में अपने ढंग की पहिली ही पुस्तक यह प्रकाशित हो रही है। विद्वानों तथा भक्तों, सर्व साधारण को भी यह उपयोगी सिद्ध होगी यह आशा है।

निवेदक—
शारदाप्रसाद
मन्त्री, मानस संघ, रामवन
(जिला सतना) म० प्र०

—:o:—

कुछ शब्द

हिन्दी काव्य-साहित्य में गोस्वामी तुलसीदास को निश्चय ही केन्द्रीय स्थान प्राप्त है। उनकी कृतियों ने रामचरित और धर्मनीति-चिन्तन के माध्यम से मध्ययुग की हिन्दू संस्कृति और आध्यात्मिकता को एक अभिनव स्वरूप प्रदान किया और राम-कथा को ख्यातवृत्त से आगे बढ़ाकर धर्म-साधना, अनुभूति और रस-संवेदना का विषय बनाया। उनकी स्वान्तःसुखाय रचित रघुनाथ-गाथा, रस विशेष भक्ति-रस अथवा उज्ज्वल-रस की प्रतिष्ठा में सफल हुई। पिछले शताधिक वर्षों से तुलसी के साहित्य को लेकर शोध और समीक्षा का जो तांता लगा है उसे भी अर्वाचीन आलोचना में वही केन्द्रीय स्थान मिल गया है जो अब तक उनके काव्य को प्राप्त था। हिन्दीके श्रेष्ठतम कवि और भारतीय साधना-परम्परा के कौस्तुभ मणि तुलसीदास यदि नई बौद्धिकता के परखने की कसौटी बन गये हैं तो आश्चर्य की कोई बात नहीं है।

इस संदर्भ में डॉ० वीरेन्द्रपाल श्रीवास्तव का शोध-कार्य महत्वपूर्ण है। उन्होंने सागर विश्वविद्यालय से पी-एच०डी० की उपाधि प्राप्त करने के लिये जिस विषय को चुना था वह था 'तुलसी विषयक अद्यावधि शोधों और समीक्षाओं का अनु-शीलन।' काल की सीमा में इसमें १८३२ ई० से १९६५ ई० तक का तुलसी के जीवन, व्यक्तित्व और कृतित्व संबंधी समस्त समारंभ आ जाता था। तीन-चार वर्षों के अथक परिश्रम के बाद वे अपना शोध प्रबंध समाप्त कर उस पर शोध-उपाधि

प्राप्त कर सके। प्रस्तुत ग्रंथ में उसी शोध के एक पक्ष को काल-क्रमागत तुलसी के शोधात्मक अध्ययन का रूप देकर पुस्तकाकार सामने रखा गया है।

यह छोटी-सी पुस्तक परिचयात्मक ही कही जा सकती है। उसमें लेखक के अपने शोध-प्रबन्ध के साथ ऐसे सैंतीस शोध-प्रबन्धों का विवरण दिया गया है जो तुलसी के जीवन, युग, साहित्य और साधना को अपने अन्वेषण का विषय बनाते हैं। यूरोप में तुलसी सम्बन्धी शोध का कार्य १६११ में ही आरम्भ हो गया था और १६१८ ई० में डाक्टर कारपेण्टर ने तुलसी के धर्म-दर्शन, थियोलॉजी, को अपना शोध विषय बनाकर भक्ति-दर्शन के क्षेत्र को अनुसंधान का क्षेत्र निश्चित किया। हिन्दी के अपने क्षेत्र में प्रस्तुत प्रथम शोध-प्रबन्ध 'तुलसी-दर्शन', डॉ० बल्देवप्रसाद मिश्र, १६३६, भी प्रकारान्तर से ही विषय लेकर चलता है। स्मरण रखना होगा कि इस समय तक तुलसी समीक्षा के क्षेत्र में डॉ० सर जार्ज ग्रियर्सन और आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की रचनाएं प्रकाशित हो चुकी थीं। और समीक्षक शोधियों की अपेक्षा अधिक प्रौढ़ और जागरूक थे। एक प्रकार से इन प्रारम्भिक समीक्षकों को समीक्षा के साथ शोध और पाठ-संपादक का भी कार्य करना पड़ा क्योंकि वे किसी विषय से बँधे नहीं थे और व्यापक रूप से तुलसी के अध्येता थे। बाद में अनुसंधित्सुओं ने उनकी बहुत सी मान्यताओं को स्वीकार कर उन पर शोध का विशाल राजप्रासाद खड़ा किया, परन्तु उनकी अपनी उपलब्धियों की भी उपेक्षा नहीं की जा सकती। पिछले तीस वर्षों में तुलसी विषयक हिंदी समीक्षा और शोध विभिन्न दिशाओं, परिपाटियों, जीवन-दृष्टियों तथा अनेक शास्त्रोंका अवलंबन कर सैंतीस शोध-प्रबंधों

और शताधिक समीक्षा-ग्रन्थों के रूप में प्लावित हुई है। डॉ० श्रीवास्तव का शोध-कार्य दोनों ही क्षेत्रों का लेखा-जोखा लेता है परन्तु इस ग्रंथ की सीमाओं के भीतर उन्होंने तुलसी-शोध के ऐतिहासिक विकास को ही महत्व दिया है। सामान्य पाठक तुलसी संबंधी अध्ययन के इस पक्ष से विशेष परिचित नहीं हैं। इस ग्रन्थ का सम्यक् अध्ययन इस अभाव की पूर्ति करेगा। जब तक डा० श्रीवास्तव का आठ सौ से अधिक टंकित पृष्ठों का वृहद् शोध-प्रबन्ध प्रकाशित नहीं हो जाता तब तक यह पुस्तक ही उनके अध्यवसाय और चिंतनका प्रतिनिधित्व करेगी। आशा है कि वह तुलसी समीक्षा का ऐतिहासिक व्यौरा भी प्रस्तुत कर देंगे जिससे तुलसी का अध्येता अपने प्रिय कवि के विषय में साम्प्रतिक ज्ञान का भी उपयोग कर सकेगा। तुलसी के अनुशीलन की नई दिशाओं के विकास के लिए हमें जिस ऐतिहासिक दृष्टि की आवश्यकता है वह इस प्रकार के क्रमागत अध्ययन की ही अपेक्षा रखती है। कोरी अंतर्दृष्टि हमें साहित्य के मर्म तक नहीं पहुँचा सकती क्योंकि साहित्य मूलतः सांस्कृतिक और राष्ट्रीय होता है और उसके सम्यक् अध्ययन के लिए हमें परम्पराओं के भीतर से गुजरना होगा। अस्तु।

हिन्दी विभाग,
सागर विश्वविद्यालय, सागर,
रामनवमी, ७ अप्रैल १९६८।

(डा०) रामरतन भटनागर
(एम.ए., डी.फिल, डी.लिट्.)

आमुख

प्रस्तुत लघु पुस्तिका का प्रणयन 'मानस संघ' (रामवन) के महामन्त्री श्रद्धेय शारदाप्रसाद के प्रेरक अनुरोध पर किया गया है। मैं जब डॉ० कारपेण्टर के शोध प्रबंध 'इथियालॉजी आफ तुलसीदास'[1] के अनुवाद शोधन के सम्बन्ध में रामवन गया था तो उन्होंने इस विषय पर चर्चा करके मेरा उत्साहवर्द्धन किया। इस प्रकार की पुस्तिका को विद्वत् पाठकगणों के सामने लाने का विचार पूर्व से मेरे हृदय में था क्योंकि मैं अपने शोध प्रबंध में ऐसी कुछ सामग्री का उपयोग स्थानाभाव के कारण नहीं कर सका था जिसे मैंने बड़े परिश्रम और मनोयोग के साथ विभिन्न अनेक विश्वविद्यालयों में जाकर संग्रहीत किया था। मेरे प्रबंध निर्देशक डॉ० रामरतन भटनागर ने भी मुझे शेष सामग्री को इस रूप में रखने की अनुमति दे दी थी। अतएव मैं यहां महाकवि तुलसीदास सम्बन्धी शोधों का परिचयात्मक अध्ययन मात्र देने का साहस कर रहा हूँ। तुलसी ऐसे महान एवं केन्द्रीय व्यक्तित्व को लेकर पिछले सवा सौ वर्षों में जो विपुल सामग्री प्रस्तुत की गई है उसको अनुशीलन का विषय बनाना साधारण साहस का कार्य नहीं था। फिर भी गुरुजनों की कृपा का संबल लेकर जो कुछ सामग्री मैंने एकत्र की उसे उसी रूप में यहाँ रख रहा हूँ। तुलसी जैसे राष्ट्रीय व्यक्तित्व के महाकवि के लिए इस प्रकार का मूल्यांकन उचित ही है। तुलसी पर की गई समस्त शोधों को एक स्थल पर पाकर उनके अन्यथालोचित एवं अनालोचित पक्षों का लेखा-जोखा लगाया जा सकता है। मैंने इस पुस्तक में भरसक प्रयत्न करके भारतीय एवं विदेशी विश्व-

विद्यालयों में पी-एच०डी० एवं डी० लिट्० उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध प्रबन्धों का परिचय मात्र दिया है। स्नातकोत्तर कक्षाओं में लघु प्रबन्धों के रूप में जो सामग्री सामने आई है उसे इसमें स्थान देना सम्भव नहीं हो सका है। जिन वर्षों में ये शोध-प्रबन्ध उपाधि हेतु स्वीकृत हुये हैं वही सन मैंने उनके सामने दे दिये हैं। इस प्रकार यह सम्पूर्ण पुस्तिका तुलसी शोधों को ऐतिहासिक क्रम विकास देने में समथ हो सकी है। यदि इस लघु पुस्तिका से तुलसी अध्येताओं को तुलसी के शोध पक्षों का किंचित मार्ग दर्शन हो सकेगा तो मेरा यह लघु प्रयास साधुवाद का पात्र होगा। संभव है स्थानाभाव के कारण या वस्तु संग्रह की त्रुटि के कारण कोई शोध ग्रन्थ इस पुस्तिका में उल्लेख न पा सका हो तो विद्वत्जन मुझे उससे अवगत कराने का कष्ट करेंगे।

प्रकाशन सम्बन्धी कार्य के लिए मैं आदरणीय बाबूजी का हृदय से ऋणी हूं जिन्होंने अपनी सत्प्रेरणा से मेरी कल्पना को साकार करने की कृपा की है। मैं अपने शोध निर्देशक डॉक्टर रामरतन भटनागर एवं डॉ० भगीरथ मिश्र, अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, सागर विश्व-विद्यालय का विशेष रूप से आभारी हूँ जिन्होंने अपना बहुमूल्य परामर्श देकर इस कार्य को गति प्रदान की है। अंत में मैं उन सभी शोधकर्त्ताओं का प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से कृतज्ञ हूँ जिन्होंने तुलसी के विभिन्न पक्षों पर विद्वतापूर्ण शोध पुस्तक देकर इस महाकवि को 'कवि सम्राट' बनाने में योग प्रदान किया। तथास्तु।

चैत्र रामनवमी सं० २·२५
राहतगढ़ (सागर) म० प्र०

वीरेन्द्रपाल श्रीवास्तव
अप्रैल ७, १९६८

अनुक्रमणिका—१

तुलसी के शोध-प्रबन्धों की तालिका

१. डा० अग्रवाल, जगदीशनारायण—
'रामचरित मानस एवं रामचंद्रिकाका तुलनात्मक अध्ययन' १९६२ (अप्रकाशित)

२. डा० अग्रवाल, रामप्रसाद— प्रकाश अग्रवाल
'वाल्मीकि रामायण और मानस का साहित्यिक दृष्टि से तुलनात्मक अध्ययन (अप्रकाशित) प्रकाशित

३. डा० अवस्थी विजयबहादुर—
'तुलसी पर पौराणिक प्रभाव' १९६० (अप्रकाशित)

४. डा० कपूर, सीताराम—
'रामायण के साहित्यिक श्रोत' (अप्रकाशित)

५. डा० कारपेण्टर, जे० एन०—
'थियालाजी आफ तुलसीदास' १९१८ (प्रकाशित)

६. डा० कुमार, वचनदेव—
तुलसी के भक्त्यात्मक गीत' १९६३ (प्रकाशित)

७. डा० कुमार, नरेन्द्र—
'तुलसी की अलंकार योजना' १९६३ (अप्रकाशित)

७. डा० कुमार, श्रीष—
'रामचरित मानस का तत्व-दशन (प्रकाशित)

९. डा० गुप्त, माताप्रसाद—
'गोस्वामी तुलसीदास' १९४० (प्रकाशित)

१०. डा० चतुर्वेदी, महेशप्रसाद—
'तुलसी का सामाजिक दर्शन' १९६१ (अप्रकाशित)

११. डा० जार्ज० एम०—
'मलयालम कवि एषुत्छत्र की रामायण का मानस से तुलनात्मक अध्ययन' १९६१ (अप्रकाशित)

१२. डा० तिवारी, चन्द्रभान—
'रीति कालीन अलंकारिक स्वर में तुलसी की अलंकार योजना' १९६४ (अप्रकाशित)

१३. डा० दीक्षित, ओमप्रकाश—
'जैन कवि स्वयंभूदेव कृत पउम चरित्र और मानस का तुलनात्मक अध्ययन' १९६१ (अप्रकाशित)

१४. डा० दीक्षित, राजपति—
'तुलसी और उनका युग' १९५२ (प्रकाशित)

१५. डा० निर्मल, रविदत्त—
'अध्यात्म रामायण का रामचरित मानस पर प्रभाव' १९६३ (अप्रकाशित)

१६. डा० पाण्डे, बी०डी०—
'रामचरित मानस की अंतर्कथाओं का आंतरिक अध्ययन' १९६१ (अप्रकाशित)

१७. डा० पाण्डे, राजकुमार—
'रामचरित मानस का काव्य शास्त्रीय अध्ययन' १९६० (प्रकाशित)

१८. डा० वाजपेयी, अम्बिकाप्रसाद—
'तुलसी के काव्य का मनोवैज्ञानिक अध्ययन' १९६२ अ०)

१९. डा० वाजपेयी, रमेश—
'तुलसी के प्रबन्ध एवं गीत काव्य का तुलनात्मक अध्ययन' १९६४ (अप्रकाशित)

२०. डा० बुल्के, कॉमिल—
'राम-कथा उत्पत्ति एवं विकास' १९४९ (प्रकाशित)

२१ डा० वोदवोल, सी०— स्रो
'रामचरित मानस के श्रोत और रचनाक्रम' १९५० (प्रका०)

२२. डा० भारद्वाज, रामदत्त—
'तुलसी-दर्शन' १९५३ (अप्रकाशित);

२३. डा० भारद्वाज, रामदत्त—
गो० तुलसीदास व्यक्तित्व दर्शन साहित्य' डी० लिट्०
१९६० (प्रकाशित)

२४. डा० मिश्र, बल्देवप्रसाद—
'तुलसी दर्शन' १९३९ (प्रकाशित)

२५. डा० मिश्र, विद्या—
'वाल्मीकि रामायण और मानस का तु० अ०' १९५८ (अ०)

२६. डा० मिश्र, विष्णुशर्मा—
'तुलसी का सामाजिक दर्शन' १९६० (अप्रकाशित)

२७. डा० राजू, सुशंकर—
'कम्ब रामायण एवं मानस का तुलनात्मक अध्ययन'
१९५९ (अप्रकाशित)

२८. डा० रस्तोगी, राजाराम—
'तुलसी की जीवनी और विचारधारा' १९५७ (प्रकाशित)

२९. डा० शर्मा, रघुराजशरण—
'तुलसी और भारतीय संस्कृति' १९६१ (अप्रकाशित)

३०. डा० शुक्ल, शिवकुमार—
'रामायणेतर संस्कृत काव्य तथा मानस का तुलनात्मक
अध्ययन' १९६४ (प्रकाशित) अप्रकाशित

३१. डा० श्रीवास्तव, देवकीनन्दन—
'तुलसी की भाषा' १९५३ (प्रकाशित)

३२. डा० श्रीवास्तव, वीरेन्द्रपाल—
'गोस्वामी तुलसीदास सम्वन्धी शोधों एवं समीक्षाओं का अनुशीलन' १९६७ (अप्रकाशित)

३३. डा० सिंह, उदयभानुसिंह—
'तुलसी दर्शन मीमांसा' १९६० (प्रकाशित)

३४. डा० सिंह, भाग्यवती—
'तुलसी की काव्य कला' १९६० (प्रकाशित)

३५. डा० सिंह, श्रीधर—
'तुलसी की करियत्री प्रतिभा' १९६१ (अप्रकाशित)

३६. डा० हुक्कू, हरिहरनाथ—
'मानस के विशिष्ट संदर्भ में तुलसी की शिल्प-कला का अध्ययन' १९३९ (अप्रकाशित)

३७. डा० त्रिपाठी, रमानाथ—
'बंगाली कविकृतिवासी की रामचरित मानस से तुलनात्मक अध्ययन' १९५७ (प्रकाशित)

—:०:०:—

अनुक्रमणिका—२

विभिन्न विश्व-विद्यालयों में प्रेषित तुलसी शोध-ग्रन्थों की सूची

१.	लन्दन विश्व-विद्यालय	—	१
२.	पेरिस विश्व-विद्यालय	—	१
३.	नागपुर विश्व-विद्यालय	—	१
४.	जबलपुर विश्व-विद्यालय	—	१
५.	काशी विश्व-विद्यालय	—	२
६.	प्रयाग विश्व-विद्यालय	—	२
७.	आगरा विश्व-विद्यालय	—	१६
८.	लखनऊ विश्व-विद्यालय	—	४
९.	मद्रास विश्व-विद्यालय	—	१
१०.	दिल्ली विश्व-विद्यालय	—	२
११.	सागर विश्व-विद्यालय	—	४
१२.	पटना विश्व-विद्यालय	—	२
	योग		३७

डा० वीरेन्द्रपाल श्रीवास्तव

७ अप्रैल, १९६८

मानस चतुश्शती

(चैत्र शुक्ल ६ सं० २०३१)

उत्सव समारोह से मनाइये

तुलसी का धर्म-दर्शन

(Theology of Tulsidas)

(डा० जे. एन. कारपेण्टर, सन् १९१८)

जगत में गोस्वामी तुलसीदास पर सर्व प्रथम उपाधि कारक शोध प्रबन्ध प्रस्तुत करने का श्रेय आंग्ल तुलसी अध्येता डा० जे० एन० कारपेण्टर को ही दिया जा सकता है। वैसे कृष्णानन्द जी ने अपने शोध प्रबन्धों के परिचयात्मक अध्ययन में डा० एल० पी० टेसीटरी (१९११) के निबन्ध में शोध-तन्तुओं का समावेश मानकर उन्हें तुलसी पर सर्वप्रथम शोध कर्त्ता घोषित किया है परन्तु शोध रूप में प्रस्तावित अध्ययन प्रक्रिया को अपनाते हुये शोधकर्ता के रूप में डा० कारपेण्टर को ही यह श्रेय दिया जा सकता है। डा० कारपेण्टर ने सन् १९१८ में लन्दन विश्वविद्यालय के तत्वावधान में यह शोध प्रबन्ध डा० आफ डिविनटी की उपाधि हेतु प्रेषित किया था। यह शोध-ग्रन्थ उसी वर्ष क्रिश्चियन लिटरेचर सोसाइटी से प्रकाशित भी हो गया। परन्तु वर्तमान समय में यह ग्रंथ अप्राप्त है। ऐसे महत्वपूर्ण ग्रन्थ का अभाव विशेष प्रकार से तुलसी अनुशीलन के इस युग में बहुत खटकने वाली बात है। इस ग्रंथ के लेखक ने

इसका हिन्दी भावानुवाद पूरा कर लिया है जिसका शीघ्र प्रकाशन अपेक्षित है। आशा है कि इस भावानुवाद से तुलसी आलोचकों को पर्याप्त लाभ प्राप्त होगा।

इस शोध-प्रबन्ध को डा० कारपेण्टर ने दो भागों में विभक्त किया है। प्रथम खण्ड में पांच अध्याय तुलसी-दर्शन की पृष्ठ-भूमि को अत्यन्त संक्षिप्त रूप में विवेचित करते हैं तथा द्वितीय खण्ड में तुलसी के धार्मिक सिद्धांन्तों को आठ अध्यायों में विश्लेषित किया गया है। डा० कारपेण्टर ने प्रस्तुत विषय की समीचीनता पर प्रकाश डालते हुये स्वीकार किया है कि भारत में रामानन्दी धर्मानुयायी वर्ग द्वारा प्रस्तुत धार्मिक सिद्धांतों का अध्ययन द्विगुणित लाभ से युक्त है। डाक्टर साहब के विषय निर्वाचन दृष्टिकोण से यह प्रकट होता है कि यह शोध-ग्रन्थ ईसाई विचारों से निकटता से साम्य रखने वाले धर्म पर प्रकाश डालते हुये उसके प्रोत्साहन की प्रेरणा देने में समर्थ होगा। यही दृष्टिकोण इस ग्रंथ की सीमा बन जाती है। परन्तु हमें इस संबंध में उदार दृष्टिकोण अपनाना होगा और तुलसी पर किए गये उनके शोध को सही स्थान प्रदान करना होगा।

प्रथम खण्ड के प्रथम अध्याय में तुलसी के धर्म दर्शन की पृष्ठ भूमि प्रस्तुत करते हुये हिन्दू धर्म का सामान्य विवेचन प्रस्तुत किया गया है। इसके अंतर्गत हिन्दू धर्म की संश्लिष्टता उसके आधार पर भूत वाङ्मय वेदों, उपनिषदों तथा षट्-दर्शनों का विवेचन अत्यन्त सूक्ष्म रूप से किया गया है। दूसरे अध्याय में अवतार और भक्ति का प्रासंगिक विवेचन किया गया है। इसके अंतर्गत अवतार का कारण प्रस्तुत करते हुए अंत में १० अवतारों की तालिका प्रस्तुत की गई है। तृतीय अध्याय में

'राम की पूजा' पर प्रकाश डालते हुए विभिन्न धार्मिक वादों का संक्षिप्त उल्लेख किया गया है। चतुर्थ अध्याय महाकवि तुलसी की अत्यन्त संक्षिप्त जीवनी प्रस्तुत करता है। इस जीवनी का मुख्याधार डा० ग्रियर्सन द्वारा प्रेषित जीवनी ही है। इस अध्याय के प्रारंभ में ही अन्वेषक का ऊहापोह स्पष्ट हो जाता है। 'यह ठीक ही कहा गया है कि तुलसीदास एक धर्म सुधारक नहीं थे, उन्होंने कोई मत स्थापित नहीं किया। उनका मुख्य महत्व इसमें है कि उन्होंने रामानन्दी मत का प्रचार किया।' पंचम अध्याय में 'मानस' के आधिकारिक कथा का कांड क्रमानुसार अत्यन्त संक्षेप में उल्लेख है। इसमें राम के भू-अवतरण से स्वर्गारोहण तक की कथा को लिया गया है। इस प्रथमखण्ड के पांच अध्याय केवल परिचयात्मक सामग्री प्रस्तुत करने में समर्थ हैं। सामग्री की उपयोगिता की दृष्टि से इन अध्यायों में प्रथम एवं तृतीय ही विशेष महत्व के हैं।

द्वितीय खंड के प्रथम अध्याय में पारब्रह्म के स्वरूप तथा उनके प्रभाव का निरूपण किया गया है। इसमें भगवान शब्द का अर्थ देकर उनकी शक्तियों का विवेचन है। नेति नेति शब्द का साम्य उन्होंने एंग्लिकन (Anglican Church) चर्च के XXXIV अनुच्छेद में वर्णित गुणों से किया है। यहां पर डा० कारपेण्टर ने तुलसी द्वारा प्रदर्शित ईश्वरीय गुणों का साम्य ईसाई मत से स्थापित किया है। उन्होने ब्रह्म, सच्चिदानन्द, शंकर का सही मूल्यांकन, प्रस्तुत करके परमब्रह्म को त्रिदेवी के ऊपर स्वीकार किया है। इस अध्याय के अन्त में वन्ध्योपाध्याय की प्रार्थना को अंग्रेजी में प्रस्तुत किया है जिसमें ईश्वर के सभी गुण समाहित हो जाते हैं। द्वितीय अध्याय में त्रिदेवों का सांग निरूपण किया गया है। इस विवेचना के आधार पर उन्होंने सिद्ध किया है

कि त्रिदेवों को तुलसी ने आदरपूर्ण स्थान नहीं दिया केवल शंकर एवं विष्णु को ही अपेक्षाकृत अधिक आदरपूर्ण स्थान दिया है। इस प्रकरण में ब्रह्मा, विष्णु, महेश की व्याख्या मानस में प्रस्तुत धार्मिक सिद्धांतों के आधार पर की गई है। तृतीय अध्याय में अन्य वैदिक देवताओं का विवेचन है। अन्वेषक के विचार से तुलसी ने इन सभी देवताओं को शक्ति-हीन सभासद के रूप में ही चित्रित किया है। परन्तु जिनके हृदय में तुलसी के आराध्यदेव के प्रति भक्ति-भाव है उन्हें उचित आदर भी उन्होंने प्रदान किया है। चतुर्थ अध्याय तुलसीके 'राम' का सांग निरूपण करता है। डाक्टर साहब ने यह स्वीकार किया है कि तुलसी ने राम को परमब्रह्म का अवतार ही माना है। इसके अंतर्गत राम का त्रिदेवों एवं अन्य देवताओं से संबंध, राम और भाग्य (Fate) राम का चरित्राङ्कन, माया और राम, राम नाम से उसका संबंध राम का सांख्य मतानुसार स्वरूपांकन आदि विषयों पर गंभीरता पूर्वक विचार व्यक्त किया गया है। अंत में उन्होंने यह स्वीकार किया है कि तुलसी ने राम के दार्शनिक स्वरूप की परिणति उनके विराट में की है। निस्सन्देह राम के सभी स्वरूपों के विवेचन में डाक्टर साहब को पर्याप्त सफलता मिली है।

पंचम अध्याय अवतार सम्बन्धी सभी समस्याओं का सांग निरूपण करता है। इसके अंतर्गत अवतार का तात्पर्य, अवतार लेने के कारण पर प्रकाश डालते हुए राम की कतिपय दुर्बल-ताओं पर संकेत किया गया है। इन दुर्बलताओं को डा० साहब ने मानवीय गुणों का आरोप ही माना है। अंत में अन्वेषक ने यह भी स्वीकार किया है कि एक स्थान में तुलसी रामानुजी परम्परा से हटते हुये प्रतीत होते हैं। इस दृष्टि से तुलसी ने

निर्गुण को ही विशिष्ट गुणों से सम्पन्न करके विशिष्टाद्वैतमत को ही प्रतिपादित किया है। छठे अध्याय में तुलसी की भक्ति सम्बन्धी धारणाओं का सांग विवेचन किया गया है। डा० साहब ने भक्ति के उद्गम पर प्रकाश डालते हुए इसे ईसाई धर्म से प्रभावित स्वीकार किया है। परन्तु उनका यह निष्कर्ष पूर्णतः एकांगी है। डा० साहब ने यह भी माना है कि तुलसी के सभी पात्र मानव हो या राक्षस प्रत्यक्ष या परोक्ष में भक्ति-रस से सराबोर हैं। भक्ति के प्रमुख तत्त्वों पर प्रकाश डालते हुये डा० साहब ने भक्ति के कुछ गुण स्वीकार किये हैं। (१) यह वर्तमान दुखों को सहन करने का सम्बल प्रदान करती है। (२) संघर्ष करने की शक्ति प्रदान करती है (३) भक्तों को बाधाओं से सुरक्षित कर उन्हें मोक्ष प्रदान करती है। सप्तम अध्याय में माया का सांग निरूपण किया गया है। माया शब्द की उत्पत्ति डा० साहब ने ऋगवेद के 'एकं सद्विप्रावहुधावदन्ति' से माना है। राम से इसका सम्बन्ध स्थापित करते हुये उन्होंने स्वीकार किया है (१) राम माया के ईश हैं (२) ईश्वर ही माया का सहारा लेकर विश्व की सृष्टि करता है (३) राम माया विशिष्ट प्रयोग करके सांसारिक व्यक्तियों को फँसाने में सफल होते हैं। (४) माया का स्वतंत्र व्यक्तित्व भी है जिसमें माया एक छल, प्रपंच, मिथ्याडम्बर के रूप का बाहुल्य है। डाक्टर साहब ने माया के तीन रूप माने हैं (१) विद्या माया (२) अविद्या माया (३) आनन्द। लक्ष्मण द्वारा प्रस्तुत माया का स्वरूप, मायाकृत परिवार, मानस रोग आदि में मायाके विविध रूपों का विवेचन किया गया है। उनके विचार से माया से मुक्ति पाने का एक मात्र साधन ईश कृपा है। अंत में अन्वेषक ने स्वीकार किया है कि वेदान्तिक वाणी में प्रयुक्त माया का स्वरूप ही तुलसी को मान्य था। जीव और ब्रह्म की प्रथकताका अभ्यास जो वेदांत में है मान्य नहीं है।

सप्तम अध्याय तुलसी के धार्मिक सिद्धांतों के एक मौलिक पक्ष पर विचार करता है, वह है पाप और मुक्ति। ईसाई धर्म में पाप की एक विशिष्ट व्याख्या मिलती है। डा० साहब की यह स्वीकारोक्ति कि पाप सम्बन्धी सामग्री का तुलसी के काव्य में अभाव है सत्य नहीं है। भारतीय धार्मिक प्रणाली में अनैतिक जीवन ही पाप का मूल माना जाता है तथा पाप को प्रायश्चित द्वारा छुटाया भी जा सकता है। डाक्टर साहब को तुलसी के यह कथन उपहासास्पद प्रतीत होते हैं जिनमें केवल मानस पठन या श्रवण मात्र से महान से महान पाप से मुक्ति का आश्वासन दिया गया है। उसे इन्होंने धार्मिक कृपणता के रूप में स्वीकार किया है। डा० साहब का यह भी कथन निराधार है कि तुलसी के विचारों ने सामाजिक उत्थान के लिये कोई प्रेरक वस्तु नहीं दी। उन्होंने तुलसी को पलायनवादी कवि स्वीकार किया है यह भी असत्य है। इस प्रकार से इस अध्याय में प्रस्तुत बहुत से तर्क पाश्चात्य मत से प्रेरित व्यक्तिवादी दृष्टिकोण के परिणाम हैं। अंतिम अध्याय उनके इस अध्ययन के कतिपय निष्कर्ष प्रस्तुत करता है। यहां शोधकर्त्ता ने स्वीकार किया है कि इस अध्ययन में एक तुलनात्मक शैली का प्रतिपादन किया गया है और इसमें उन्हीं अंशों को यहां प्रबलतापूर्वक प्रतिस्थापित किया गया है जो ईसाई धर्म के अत्यधिक निकट है। उनका कहना है कि दोनों धर्म ईश्वर को परमब्रह्म स्वीकार करते हैं। दोनों धर्म नैतिक आदर्शों को एक सा महत्व प्रदान करते हैं। भारतीय त्रिदेव 'होलीट्रिनिटी' से साम्य रखते हैं। डा० साहब अवतार-वाद को वर्तमान शक्ति के रूप में ही स्वीकार करते हैं ऐति-हासिक तथ्य मात्र नहीं। अंत में राम एवं ईसामसीह द्वारा मोक्ष देने सम्बन्धी कार्यों की तुलनात्मक विवेचना भी की है। भक्ति को वे ईश्वर और जीव के बीच सम्बन्ध स्थापित करने

वाली कड़ी के रूप में स्वीकार करते हैं। अंत में डा० कारपेण्टर की इस उदार भावना का हम हार्दिक स्वागत करते हैं जिसमें उनके परिश्रम की सार्थकता इस बात में मानी है कि जब विश्व के सभी विचारवान पुरुष रामानंदी विचारधारा को निकटता से समझेंगे। इस शोध की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि सभी उद्धरण नागरी लिपि में ही दिये गये हैं तथा उसकी समुचित व्याख्या भी तर्क सम्मत रूप में दी गई है। तुलसी के पाश्चात्य अध्येताओं की परिपाटी में डा० कारपेण्टर ऐसे शोधकर्त्ता हैं जिन्होंने नागरी लिपि में ही उद्धरण दिये हैं। इससे उनके हिंदी प्रेम का परिचय मिलता है।

तुलसी दर्शन

(डा० बल्देवप्रसाद मिश्र, १६३६)

गोस्वामी तुलसीदास के धार्मिक पहलू पर दूसरा शोध-प्रबन्ध डा० बल्देव प्रसाद मिश्र द्वारा सन् १६३६ में नागपुर विश्वविद्यालय के तत्त्वावधान में प्रेषित किया गया। उन्हें इसमें डी० लिट्० की उपाधि प्रदान की गई। इसका प्रकाशन हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग से किया गया। डा० साहब ने अपने विषय की समीचीनता पर प्रकाश डालते हुये स्वीकार किया है, "मानस के भक्तिरस पर किसी ने स्वतन्त्र रूप से लिखने की अब तक कोई चेष्टा नहीं की.....मानसका अध्ययन करके हमने जिस सांगोपांग तुलसी मत का अन्वेषण किया है उसे विद्वत मंडली के सम्मुख रखने के अभिप्राय से यह निबन्ध लिखा है।" इससे स्पष्ट है कि डाक्टर साहब का प्रमुख उद्देश्य तुलसी के भक्ति शास्त्रका अध्ययन करना ही है। इस ग्रंथ में विद्वान अनुसंधाता ने आठ प्रकरणों में अपनी सम्पूर्ण सामग्री संजोई है। प्रथम दो अध्याय भारतीय भक्ति मार्ग को स्पष्ट रूप से समझाने का प्रयास करते हैं। इनमें यह सिद्ध किया गया है कि भारतीय भक्ति मार्ग मूलक भारतीय भक्ति पद्धति का पूर्ण विकसित रूप है किसी विदेशी धर्म से प्रभावित प्रक्रिया नहीं। अध्याय तृतीय और चतुर्थ में तुलसी के दार्शनिक दृष्टि की सूक्ष्म व्याख्या प्रस्तुत की गई है। शेष अध्याय भक्ति और आराधना के सिद्धांतों की व्यापक व्याख्या से सम्बन्धित हैं। अन्तिम परिच्छेद में डा० मिश्र ने कतिपय निष्कर्षों को प्रस्तुत किया है। प्रथम अनुच्छेद गोस्वामी और उनके मानस से सम्बन्धित है।

यह परिच्छेद सामान्य रूप से भूमिका का कार्य करता है। इसमें तुलसी की जीवनी और कृतित्व पर विचार करते हुए मानस के गुणों पर प्रकाश डाला गया है। इस विवेचना में डाक्टर साहब ने अत्यन्त व्यवहारिक एवं तर्क सम्मत धर्म को ही सामने रखने का प्रयास किया है। उनके विचार से 'मानस' सर्वदर्शन संग्रह तथा मत मतान्तरों का कोष ग्रन्थ नहीं है। कथा वस्तु के सम्बन्ध में उनका कथन कितना सत्य है कि मानस नर शास्त्र नहीं भक्ति शास्त्र ग्रंथ है जिसमें भगवान की लीलाओं एवं मन्त्रों की चर्चा की गई है और इसीलिए यदि कोई पात्र उपेक्षित रह गए हैं तो कवि के लिए क्षम्य है। डा० मिश्र का मत है कि तुलसी ने मानस में २५ स्तुतियों एवं २२ गीताओं में दार्शनिक तत्वों का विश्लेषण किया है। इनमें ईश्वर, जीव, जगत, ज्ञान, वैराग्य, माया, भक्ति आदि सभी पर प्रकाश डाला गया है। भक्ति को ही भव बन्धन का उन्होंने साधन स्वीकार किया है। उन्होंने इसे अलग से भक्तियोग के रूप में स्वीकार किया है।

परिच्छेद द्वितीय भारतीय भक्ति मार्ग पर व्याख्या प्रस्तुत करता है। डाक्टर साहब का कथन है कि भारतीय भक्ति मार्ग इतिहास की आकस्मिक घटना नहीं है यह क्रमशः विकसित होने वाली दार्शनिक अभिनीत की चरम परिणति है। इसका अध्ययन डा० साहब ने कई भूमिकाओं में किया है। उन्होंने इस गवेषण में स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है कि रामानुजाचार्य के ऊपर ईसाई धर्म का कोई प्रभाव नहीं था। उन्होंने भक्ति मार्ग के विकास का समन्वित इतिहास देकर भक्ति मार्ग के सिद्धांतों पर विचार किया है। इस रस की इतनी प्रभूत सामग्री दी है कि अलग से यह एक रस की कोटि में आ गया है। तुलसी का उद्देश्य इसी भक्ति का प्रचार एवं प्रसार करना था। नवधा

भक्ति में डा० साहब के विचार से तुलसी ने निष्काम भक्ति को ही सर्व श्रेष्ठ माना है। अन्त में भक्ति के गुण दोषों का विवेचन किया गया है। उनके विचार से यह पद्धति लोक धर्म का पूर्ण निर्वाह करती है जिसमें कर्म, भक्ति एवं ज्ञान का समन्वय मिलता है। तृतीय परिच्छेद जीव की कोटियों से सम्बन्धित है। डा० साहब ने तुलसी के अनुकूल ही जीवों की तीन कोटियाँ मानी है। (१) विषयी (२) साधक (३) सिद्ध। इन तीनों कोटियों की उन्होंने व्यापक व्याख्या प्रस्तुत की है। प्रकारान्तर में नारी निन्दा प्रकरण पर प्रकाश डालते हुए डा० मिश्र ने इसे समीचीन सिद्ध किया है। इन्हें डाक्टर साहब ने स्थान, समय एवं पात्रानुसार पूर्णतः सत्य एवं अनिवार्य माना है। वास्तविक रूप में तुलसी ने स्त्री के प्रमदा रूप को ही निन्दा का विषय माना है। उन्होंने विलासिता को हेय समझ कर उसे 'नारी' शब्द से अभिहित किया है। दुर्जन के रूप में उन्होंने दो रूप माने है। (१) खल (२) राक्षस। सज्जनों को तुलसी ने संत की श्रेणी में रखा है। तुलसी ने भक्तों के लक्षणों पर तीन स्थानों में प्रकाश डाला है। प्रथम स्थान में नौ गुणों का उल्लेख है दूसरे स्थान में १७ गुण तथा तीसरे स्थान में १४ प्रकार के भक्तों का उल्लेख किया गया है। डाक्टर साहब ने इन दो तालिकाओं का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है और केवल उनमें चार गुणों को प्रधानता से स्वीकार किया है (१) विवेक (२) वैराग्य (३ भगवत् प्रेम (४) परोपकार जिनके भीतर सभी गुणों का समाहार हो जाता है। अंत में डा० मिश्र ने मानवेतर योनियों का यहाँ उल्लेख किया है। इस सम्पूर्ण अध्ययन से स्पष्ट है कि जहाँ एक ओर तुलसी ने साधु देव एवं ऋषि आदि का चित्रांकन किया है उसी स्थान मे विषयी जीव की चर्चा भी की है।

परिच्छेद चतुर्थ में 'तुलसी के राम' का व्यापक विवेचन किया गया है। इस प्रकरण में डा० मिश्र ने राम के व्यक्तित्व को ऐतिहासिक एवं मनोवैज्ञानिक भूमिका में रखकर उनके सच्चे स्वरूप को उभारने का प्रयास किया है। इसके अन्तर्गत परात्परब्रह्म, सगुण, निर्गुण ब्रह्म के सच्चे स्वरूपों को निर्धारित कर एक नव्यान्वेषण प्रस्तुत किया गया हैं। उन्होंने राम के व्यक्तित्व को तीन रूप में परीक्षित किया है। (१) सुराकार (२)नराकार (३)निराकार। अभी तक किसी ने तुलसी के राम के नराकार स्वरूप का एतिहासिक भूमिका में इतना मनोवैज्ञानिक रूप में विश्लेषण प्रेषित नहीं किया था जैसा कि डा० मिश्र ने किया है। उनके विचार से तुलसी के राम न केवल ब्रह्म थे और न महाविष्णु और न केवल मर्यादा पुरुषोत्तम परन्तु वे तीनों के सामंजस्य रूप थे। डाक्टर साहब इसी स्थल पर राम की अलौकिक क्रियाओं को वैज्ञानिक सत्यता प्रदान करके उसकी एक नव्य व्याख्या प्रस्तुत की है। उनके विचार से क्षिति जल, पावक के नैसर्गिक नियमों में विपर्यय कर देना ही उनकी उन तत्वों पर विजय थी। तुलसी के इन अलौकिक शक्तियों से राम को विभूषित कर देने से राम को अलौकिकता प्रदान कर देता है। इसी स्थल पर बालिबध, सूर्पणखा विरूपीकरण आदि घटनाओं को तात्कालिक राष्ट्रनीति के अन्तर्गत पूर्णतः नीति युक्त कार्य उन्होंने स्वीकार किया है। उनके विचार से राम का न्याय एक संरक्षक का न्याय था। इस प्रकार अंत में उन्होंने स्वीकार किया है कि तुलसी के राम के कर्म अनन्त गुण अनन्त और उनके स्वभाव एवं माधुर्य अनन्त थे तथा वे आकृति, प्रकृ'त एवं परिस्थिति तीनों में आदर्श थे। उन्होंने कहीं पर मर्यादा एवं औचित्य का सीमोल्लंघन नहीं किया। इस प्रकार राम के तीनों स्वरूपों में तादात्म्य स्थापित कर दिया है।

पंचम परिच्छेद विरति विवेक से सम्बन्धित है। डाक्टर साहब ने विरति का अर्थ कर्म और विवेक का अर्थ ज्ञान माना है। इन दोनों के साथ-साथ माया का प्रासंगित विवेचन किया है। जिसके माध्यम से भव बंधन बँधते हैं उसे डाक्टर साहब ने माया माना है और जिससे बंधन खुलते हैं उसे भक्ति। विद्या माया को उन्होंने विश्व सृष्टि के लिए अनिवार्य विकल्प स्वीकार किया है और अविद्या माया संसार में दंभ पाखण्ड की विस्तारक एजेंसी के रूप में उन्हें मान्य है। उनके विचार से वैराग्य बिना ज्ञान एवं विवेक का सहारा पाए पथ भ्रष्ट हो जाता है। यद्यपि तुलसी ने वैराग्य का कोई स्वतंत्र व्यक्तित्व नहीं स्वीकार किया परन्तु उनके भक्ति मार्ग में उसका भी समावेश उन्हें स्वीकार है। डाक्टर साहब के विचार से तुलसी के दार्शनिक सिद्धान्त शाङ्कर अद्वैत के अत्यन्त निकट हैं। इसी स्थल में उन्होंने ब्रह्म, जीव, माया, मोक्ष और उसके साधनों का स्पष्ट विवेचन कर दिया है। षष्ट परिच्छेद 'हरि भक्ति पथ' का विवेचन प्रस्तुत करता है। डाक्टर साहब ने विरति एवं विवेक का समाहार हरि भक्ति में माना है। तुलसी ने 'श्रुति सम्मत हरि भक्ति पथ' को 'संयुत विरति विवेक' स्वीकार किया है। भक्ति के लिए डाक्टर साहब श्रद्धा अनिवार्य मानते हैं। वे भक्ति को साधन ही मानते हैं साध्य नहीं। अन्त में उन्होंने तुलसी प्रणीत ज्ञान एवं भक्ति के प्रकरण में भक्ति की सर्वोपरिता सम्बन्धी तर्कों की समीचीनता सिद्ध की हैं परन्तु यहाँ उन्होंने यह अवश्य स्वीकार किया है कि भक्ति की महत्ता को सर्वोपरि स्वीकार करते हुए तुलसी ने ज्ञान के वास्तविक महत्व की अवहेलना नहीं की। तुलसी ने इसे प्रवृत्तियों के उदात्तीकरण के रूप में ही माना है और इसी लिए उन्होंने इसे जीवन के हित में अनिवार्य आवश्यकता के रूप में स्वीकार किया है।

इसे डा० मिश्र सर्वधर्मों का सुसंस्कृति संग्रह रूप मानते है। सप्तम परिच्छेद में भक्ति साधनों की व्याख्या की गई है। उनके विचार से तुलसी का प्रतिपाद्य ही राम भक्ति का प्रसार था। इस विवेचना में नवधा भक्ति एवं भक्ति के साधनों का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। डा० मिश्र ने बाल्मीकि गीता से १४ प्रकार की भक्ति को खोज निकाला है। इन चौदह साधनों में उभय प्रकार के साधनों का समाहार हो जाता है। तुलसी ने इन सब में सेवक सेव्यभाव को ही सर्वोत्तम माना है। डा० मिश्र की यह मान्यता है कि ये सभी साधन एक दूसरे के पूरक तो है परन्तु एक साधन का पूर्ण निर्वाह करने पर मनुष्य को मुक्ति मिल सकती है।

अन्तिम परिच्छेद तुलसी मत की विशेषता से सम्बद्ध है। इसके अन्तर्गत विभिन्न विषयों पर विचार करते हुए अंत में तुलसी मत की तीन विशेषताओं पर प्रकाश डाला गया है। (१) तुलसी मत में हृदयवाद और बुद्धिवाद का सुन्दर समन्वय हुआ है। (२) हिन्दू सनातन धर्म का यह विशुद्ध रूप है। ३) यह नकद धर्म है। उनके विचार से तुलसी की यह सर्वोत्कृष्ट विशेषता है कि एक ओर इसे उन्होंने हृदयवाद और विवेक की सुदृढ़ सीमाओं के अन्दर नियमन किया है और दूसरी ओर चरम सीमा तक पहुँचे हुए बुद्धिवाद को वैराग्य से समन्वित करके देखा है। उनकी यह स्वीकारोक्ति स्पृहणीय है कि तुलसीके समन्वित धर्म में केवल भारतीय सभ्यता एवं सांस्कृतिक धर्मों के मुख्य सिद्धांन्तों का ही समावेश नहीं है वरन् गीता से गांधीवाद तक के सभी सिद्धांन्तों का पूर्ण परिपाक इसमें मिलता है। इस सम्पूर्ण शोध प्रबंध को आद्योपांत अध्ययन करने के बाद यह बात साफ है कि इस शोध में यद्यपि इस बात

का स्पष्ट प्रतिरोध नहीं किया गया कि डा० कारपेण्टर एवं डा० ग्रियर्सन द्वारा प्रस्तुत मत कि भारतीय भक्ति मार्ग ईसाई धर्म से प्रभावित है परन्तु भारतीय भक्ति मार्ग के उद्गम विकास एवं प्रसार का समन्वित इतिहास देकर सिद्ध कर दिया है कि ऐसे पाश्चात्य विचारकों का मत पूर्णतः भ्रामक है।

रामचरित मानस के कला सौष्ठव का विश्लेषण

[3] An Analysis of the Tulsidas's Craftmanship in Ram Charit Manas.

(डा. हरिहरनाथ हुक्कू, १६३६)

डा० हरिहरनाथ हुक्कू ने सन् १६३६ में आगरा विश्वविद्यालय के तत्त्वावधान में प्रस्तुत शोध प्रबंध अंग्रेजी भाषा में प्रेषित किया था। यह अभी तक अप्रकाशित है। डा० हुक्कू ने निस्संदेह इस शोध प्रबध में तुलसी के कला सौष्ठब पर नूतन रूप से मौलिक विचारणा प्रस्तुत की है। ये ऐसे शोध कर्ता हैं जिन्होने आधिकारिक रूप से घोषित किया कि तुलसी केवल एक धार्मिक कवि मात्र नहीं थे वे उच्चकोटि के साहित्यिक कलाकार भी थे। तुलसी की कृतियाँ जिस प्रकार हमारी धार्मिक जिज्ञासा की पूर्ति करती हैं इससे अधिक वे हमारी कलात्मक वृत्ति को भी सन्तुष्टि प्रदान करती हैं। डा० साहब ने इस सम्पूर्ण गवेषणा को तीन खण्डों में विभक्त करके रखा है। उन्होंने अपने प्रथम खण्ड की व्याख्या में कई महत्पूर्ण समस्याओं की ओर संकेत किया है। वे यह स्वीकार नहीं करते कि मर्यादा पुरुषोत्तम राम का अवतरण सामाजिक अनुशासन की दृढ़ता प्रदान करने के लिये हुआ था। वे राम के अयोध्या में अवतरण की घटना को कोई महत्व पूर्ण घटना भी नहीं स्वीकार करते। उनका कथन है कि रावण के दल का नाश एक जन

पीड़क के दलन के रूप में नहीं हुआ वरन् पारस्परिक ईर्षा एवं वैमनष्य के कारण हुआ है। डा० हुक्कू का मत है कि तुलसी के मानस निर्माण का एक मात्र लक्ष्य रमणीक कथा के माध्यम से सामान्य जीवन को आनन्द एवं प्रेम से परिपूर्ण करके जीवन की दुराशा एवं घृणा को दूर करना है। इसमें प्रमुख रूप से तीन बातों पर प्रकाश डाला गया हैं। (१) मानस रचना का उद्देश्य (२) तुलसी के राम-कथा चयन का कारण (३) तुलसी की समन्वयवादी वृत्ति। इन तीन बातों की व्याख्या उन्होने तीन अधिकरणों में की है।

द्वितीय खण्ड में चार प्रमुख बातों पर विचार किया गया है। इसमें प्रमुख मार्मिक प्रसंगों की कलात्मक परख प्रस्तुत की गई है. राम कथा के चार कथा सूत्र उन्हें मान्य हैं। (१) विश्वामित्र का अहिल्योद्धार हेतु राम का माँगना (२) स्वयंवर में परशुराम का आगमन (३) दशरथ से कैकेई द्वारा वर याचन (४) सीता हरण। डाक्टर साहब का मत है कि बालकाण्ड में वात्सल्य प्रेम की जैसी कलात्मक अभिव्यक्ति की गई है वैसी अन्य कवि द्वारा नहीं की गई। युद्धों की बढ़ती हुई क्रमिक विभीषिका का मूल्यांकन करते हुए डा० साहब ने ताड़का सुबाहु के साथ युद्ध, खरदूषण के साथ युद्ध, रावण के साथ युद्ध–उत्तरोत्तर विकास का क्रम देखा है। ये युद्ध क्रमशः भयानक से भयानकतम होते गए हैं। इसे उन्होंने कवि की उच्चकोटि की प्रबंध पटुता का परिचायक तथ्य स्वीकार किया है। उपरोक्त तीनों प्रसंगों में डाक्टर साहब ने उच्चकोटि की कलात्मक अभिव्यक्ति के दर्शन किए हैं। तृतीय खण्ड में तुलसी के कला सौष्ठव के ही संदर्भ में चरित्रों का मूल्यांकन किया गया है। अहिल्योद्धार प्रकरण का अन्य संस्कृत काव्यों से तुलनात्मक

अध्ययन प्रस्तुत कर डा० साहब ने स्वीकार किया है कि तुलसी के मर्यादा पुरुषोत्तम राम ने मर्यादा एवं औचित्य का कहीं भी सीमोल्लंघन नहीं किया है। उन्हें यह मान्य है कि तुलसी के राम मर्यादा पुरुषोत्तम हैं महा मानव हैं और उनमें उन सभी गुणों का समाहार है जो एक महत्तम शक्ति में होने चाहिए। डाक्टर साहब ने इन सभी चरित्रांकन में कलात्मक अभि-व्यक्ति की ओर विशेष ध्यान दिया है।

चतुर्थ खण्ड में तुलसी के काव्य सौष्ठव के संदर्भ में उनकी टेकनीक का आठ उपखण्डों में अध्ययन किया है। (१) तुलसी का हास्य (२) तुलसी का शृंगार रस (३) मानस में ध्वनि का प्रयोग (४) मानस के छंदों में एक स्वरता का परीक्षण (५) मानस का कथा शिल्प (६) मानस की कविता का ताना-बाना (७) मानस की शैली (८) मानस का छंद विधान। इन सभी प्रकरणों में डाक्टर साहब ने तुलसी की कलात्मक अभिव्यक्ति पर विशेष रूप से विचार किया है। मानस के कथा शिल्प की विवेचना में उन्होंने मानस को एक उच्चकोटि के शिल्प से निर्मित आकर्षक मूर्तियों से सुसज्जित महा मन्दिर माना है जिसके दोनों ओर छः विशाल भवन एक ही तरह के शिल्प साम्य के साथ निर्मित हैं। इस महामन्दिर के मध्य में निराकार निर्गुण राम की मूर्ति प्रतिस्थापित है। मानस की छंद योजना की बिभिन्न गणनात्मक तालिकाओं को प्रस्तुत करके एक विशिष्ट प्रकार के सांख्यकीय निष्कर्षों में पहुँचाया गया है। इसमें कई विषयोंमें डा० साहब ने पूर्णतः नव्य रूप से विश्लेषण प्रस्तुत किया है जिसको आज तक भी न तो आगे बढ़ाया गया और न उनके द्वारा निर्देशित मार्ग पर कार्य ही किया गया। चतुर्थ खण्ड में तुलसी के कलात्मक विश्लेषण

के विशेष संदर्भ में कवि की वर्णनात्मक प्रतिभा के अन्य स्व-रूपों का उल्लेख किया गया है। इसमें पांच अधिकरण हैं। (१) तुलसी एक वर्णनात्मक कवि के रूप में (२) मानस के अन्तर्द्वन्द (३) मानस के मार्मिक प्रसंग (४) मानस का महाकाव्यत्व (५) कतिपय समस्यायें और उनका निराकरण। प्रथम अधिकरण के अंतर्गत उन्होंने स्वीकार किया है कि तुलसी ने मार्मिक प्रसंगों को स्वेच्छा से जोड़कर अपनी कलात्मक अभिव्यक्ति को चार-चांद लगा दिये हैं जैसे रावण के कुल में मन्दोदरी के हृदय में राम भक्ति का संचार करके रावण को राम-भक्त की भूमिका में अवतरित करना। मानस के महाकाव्यत्व के संदर्भ में डाक्टर साहब ने इसे सांस्कृतिक विकास का शाश्वत महाकाव्य माना है। उन्होंने एपिक काव्यों में मानस को सर्वश्रेष्ठ स्थान दिया है। उन्होंने इसे विश्व के महान आशावादी मानववाद का सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ माना है। अंतिम अधिकरण में मानस की छः शंकाओं का तार्किक समाधान प्रस्तुत करते हुये इस प्रसंग को समाप्त किया गया है। अंत में डा० हुक्कू ने कलात्मक कसौटी के आधार पर कतिपय गणनात्मक निष्कर्ष भी निकालें हैं। उनके विचार से मानस का एक मात्र लक्ष्य राम-भक्ति का प्रसार करना तथा जन-जन में शक्ति संचार करना था। डाक्टर साहब ने इस गवेषण से यह सिद्ध कर दिया कि मानस निस्संदेह एक अद्वितीय कलात्मक कृति है। इस महा-काव्य में तुलसी उपनिषदों के सम्राट के रूप में ही दिखाई पड़े हैं। पर यह खेद का विषय है कि उनके इस शोध प्रबन्ध द्वारा निर्देशित अनालोचित विषयों पर आगे कार्य नहीं प्रारम्भ किया गया और इस ग्रन्थ के अप्रकाशित रहने से इसका उतना सही उपयोग तुलसी अध्येताओं द्वारा नहीं किया गया जितना किया जाना चाहिये।

तुलसी के जन्म-स्थान, तिथियों, इति-वृत एवं कृतित्व सम्बन्धी शोध

(डा० माताप्रसाद गुप्त, १६४०)

सन् १६४० में प्रयाग विश्व विद्यालय के तत्त्वावधान में डा० माताप्रसाद गुप्त ने इस विषय पर शोध-प्रबंध प्रेषित किया था जो कि प्रयाग विश्वविद्यालय की ओर से 'तुलसीदास' शीर्षक से प्रकाशित भी हो गया। इस ग्रंथ में कुल सात अध्यायों में अपनी वैज्ञानिक गवेषणा प्रस्तुत की है। प्रथम तीन अध्यात्रों में गोस्वामी जी की जीवनी पर व्यापक विश्लेषण दिया गया है तथा बाद के तीन अध्याय तुलसी के कलात्मक अनुशीलन से सम्बन्धित हैं तथा अन्तिम अध्याय तुलसी की धार्मिक भावना से सम्बन्धित हैं। इस प्रकार यह शोध प्रबंध तुलसी के विविध पक्षों को स्पर्श करता हुआ एक आधिकारिक विवेचन प्रस्तुत करने में समर्थ है।

प्रथम तीन अध्यायों के अन्तर्गत भूमिका, अध्ययन के आधार, जीवन वृत्त, जीवनी सम्बन्धी गवेषणा प्रस्तुत की गई। चतुर्थ अध्याय में कृतियो के पाठ्यक्रम, पंचम में कृतियों का कालक्रम तथा षष्ट अध्याय में तुलसी की कला पर विचार किया गया है। प्रथम अध्याय में डा० गुप्त ने तुलसी युग से लेकर अपने युग तक की गई समीक्षाओं का परिचयात्मक वर्णन किया है। इस भूमिका भाग में विशिष्ट रूप से उन समीक्षाओं

का ही उल्लेख किया गया है जिनके द्वारा तुलसी अध्ययन में विशेष अभिवृद्धि की गई है। इस विवेचना द्वारा यह सिद्ध किया गया है कि उनके युग तक तुलसी की जीवनी एवं काव्यात्मक विवेचन पूर्णत: स्पष्ट नहीं था। इसी कमी की पूर्ति हेतु उन्होंने यह शोध प्रबन्ध प्रस्तुत किया है। द्वितीय अध्याय में तुलसी की जीवन वृत्त सम्बन्धी आधार की विधिवत् विवेचना एवं वैज्ञानिक परीक्षण प्रस्तुत किाय गया है। इस अध्ययन में उनका दृष्टिकोण पूर्णत: शोध कर्त्ता की भाँति तत्वानिवेषी रहा है और इस प्रकार से तुलसी की जीवनी निर्माण में उन तथ्यों की परख की गई है जो निश्चय ही महत्वपूर्ण सामग्री प्रस्तुत करने में समर्थ हैं। इस परीक्षण शृंखला में मूल गोसाईं चरित, भक्त-माल, प्रियादास की टीका, भविष्य पुराण, वार्ता आदि आधार ग्रन्थों द्वारा प्रस्तुत सामग्री की प्रामणिकता की परीक्षा की गई है। डा० गुप्त ने जन्म स्थान सम्बन्धी विभिन्न स्थानों में सुरक्षित सामग्री का प्रत्यक्ष परीक्षण कर उसकी अतरंग एवं बहिरंग परीक्षा करके उसकी प्रामाणिकता को परखने का प्रयत्न किया है। इसी संदर्भ में तुलसी की प्रामाणिक कृतियों का भी परीक्षण हुआ है। उनमें पूर्व निर्धारित द्वादस ग्रन्थों को प्रामाणिकता दी गई है। उन्होंने 'राम-सतसई' को भी तुलसी कृत माना है। उन्होंने सभी प्रतिलिपियों का निकट से परीक्षण करते हुये यह सिद्ध किया है कि कोई भी प्रति तुलसी कालीन नहीं है केवल 'राम मुक्तावली' को ही वे तुलसी कालीन प्रतिलिप स्वीकार करते हैं। इस सम्बन्ध में उनका अन्तिम निर्णय विचारणीय है। "जो सामग्री हमें जीवन वृत्तों के रूप में प्राप्त है वह ऐसी है कि उसका आधार बिल्कुल नहीं ग्रहण किया जा सकता। शेष जीवन सन्बन्धी सामग्री कई कोटि की है और उसका महत्व भेद बहुत स्पष्ट है। फिर भी पिछली की अपेक्षा
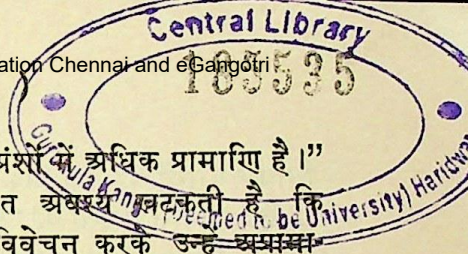
वह अधिक उपयोगी तथा अनेक अंशों में अधिक प्रामाणि है।" इस सम्पूर्ण परीक्षण में यह बात अवश्य खटकती है कि डा० गुप्त ने सभी सामग्रियों का विवेचन करके उन्हें अप्रामाणिक बताकर तत्सम्बन्धित अपना निर्णय नहीं दिया जिससे उनकी इस गवेषणा के आधार पर हम तुलसी की जीवनी एवं कृतित्व सम्बन्धी कोई समन्वित विवरण नहीं प्राप्त कर पाते।

तृतीय अध्याय में जीवन वृत सम्बन्धी विविध पक्षों पर गवेष्णात्मक परीक्षण प्रस्तुत किया गया है। इसमें सर्व प्रथम सोरों सम्बन्धी नवोदित सामग्री का परीक्षण किया गया है। इस सामग्री को उन्होंने सात शीर्षकों में रखकर अध्ययन किया है। इस परीक्षण में उन्हें यह सामग्री विश्वासहीन दिखाई दी है, इसके अनन्तर जन्म सम्बन्धी विविध तिथियों का तुलनात्मक अध्ययन करके १५८९ सं० भादों सुदी ११ मङ्गल को ही प्रमाणिक तिथि स्वीकार की गई है इससे अधिक मतभेद कवि के जन्म स्थान के सम्बन्ध में है। राजापुर की सामग्री का अंतरङ्ग एवं बहिरङ्ग पक्षों का विवेचन करके उन्होंने इसे ही अपेक्षाकृत प्रामाणिक एवं विश्वसनीय माना है परन्तु उनकी इस मान्यता का आधार अधिक दृढ़ एवं वैज्ञानिक नहीं प्रतीत होता। इसके अनन्तर सोरों एवं रामपुर की सामग्री का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुतकर रामनरेश त्रिपाठी द्वारा दिये गये तर्कों को निराधार सिद्ध करने का प्रयास डा० गुप्त ने किया है। जन्म स्थान सम्बन्धी विवेचना के उपरांत उनका ऊहा-पोह बना ही रहा। फलतः दोनों पक्ष के प्रस्तुत साक्ष्य के आधार पर यह कहना कठिन है कि दोनों में से कौन सा स्थान कवि का जन्म स्थान है। और यह भी सर्वथा असम्भव नहीं कोई तीसरा स्थान उस पुनीत पद का अधिकारी हो।" इसी प्रकार उनकी जाति, उनका नन्ददास से सम्बन्ध, उनके जीवन संघर्ष आदि

विविध प्रसंगों पर वैज्ञानिक परीक्षण प्रस्तुत किये गये हैं। अन्त में डा० गुप्त ने तुलसी की प्रयाण तिथि सं० १६८० श्रावण-शुक्ला तीज शनि ही स्वीकार की है। इस समस्त गवेषण एक वैज्ञानिक समीक्षक की भांति तथ्यों का परीक्षण करके उसे केवल डा० साहब ने प्रामाणिक एवं गैर प्रामाणिक ही घोषित किया है। यहां भी वे गोस्वामी तुलसीदास जी की समन्वित आधिकारिक जीवनी स्वीकार करने में समर्थ नहीं हो सके। फिर भी तथ्यान्वेषण में उनका योगदान परम महत्व का स्वीकार किया जा सकता है।

चतुर्थ अध्याय में कृतियों के पाठ का वैज्ञानिक परीक्षण किया गया है। यहाँ पुनः उन्होंने स्वीकार किया है कि तुलसी के किसी कृति की प्रतिलिपि कविकालीन नहीं है। इस परीक्षण में प्रतिलिपि लेखा-जाँच का शास्त्रीय एवं वैज्ञानिक आधार लेकर सभी द्वादस ग्रन्थों के पाठ सम्बन्धी दृष्टिकोण पर अपना निर्णय प्रेषित किया गया है। पंचम अध्याय कृतियों के काल-क्रम के निर्धारण से सम्बन्धित है। यहां पर कुल तेरह ग्रंथों पर विचार किया गया है। चूंकि तुलसी ने चार ग्रन्थों का रचना-काल अपनी कृतियों में उल्लिखित कर दिया है इसलिये उनका केवल उल्लेख मात्र कर दिया गया है। उनके द्वारा निर्णीत तिथियां इस क्रम से दी गई हैं:—१. रामाज्ञा प्रश्न (सं० १६२१) २. मानस (सं० १६३१), ३. सतसई (१६४१), ४. पार्वती मङ्गल, (१६४३), ५. रामलला नहछू (१६२१), ६. वैराग्य संदीपनी (१६२१), ७. गीतावली, ८. श्रीकृष्ण गीतावली, ९. बरवै, १०. विनय पत्रिका-संकलन। इन रचनाओं के तिथि क्रम निर्धारण के सिद्धांतों का प्रतिपादन करते हुये स्वयं डा० साहब ने स्वीकार किया है, 'मेरा उद्देश्य निरन्तर यही रहा है कि सिद्धांत-

वाद की अपेक्षा अनुमानवाद को अधिक प्रश्रय दूँ, तथ्यवाद की अपेक्षा विचारवाद को भी प्रधानता दूँ और आपसे प्रस्तुत प्रसंग में अन्तिम शब्द कहने की चेष्टा करूँ वरन् तर्क क्रिया तक ही प्रमुख रूप से अपनी शक्ति का उपयोग करूँ।' 'नहछू' को उन्होंने बाल रचना ही स्वीकार किया है और 'मानस' को कई बैठकों में लिखी हुई रचना वे मानते हैं तथा उसके निर्माण में एक लम्बे काल तक सुधार एवं परिवर्द्धन करने की छूट दी है।

षष्ट अध्याय तुलसी की कला से संबंधित है। इस विवेचना में डा० गुप्त ने यह दावे के साथ स्वीकार किया कि संदर्भण कला का वैशिष्टय होने पर भी कवि में पर्याप्त मौलिकता है और उसे उन्होंने कई पुष्ट प्रमाणों के आधार पर सिद्ध कर दिया है। सर्व प्रथम उन्होंने मानस के पात्रों का चरित्र चित्रण प्रस्तुत किया है। इस अध्ययनमें बाल्मीकि रामायण एवं अध्यात्म रामायण द्वारा प्रस्तुत चरित्रों से तुलनात्मक अध्ययन भी किया गया है। उनका निर्णय विशेष उल्लेखनीय है कि संस्कृत राम काव्य के लक्ष्मण, भरत, कौशिल्या, दशरथ आवेश, अविचार एवं अविवेक से प्रभावित होकर अनैतिक बात तक कह डालते हैं जबकि मानस के पात्र आवेशवाद से पूर्णतः अछूते हैं। उनका कथन सत्य है कि तुलसीके राम में अक्षत गुणों के उच्चतम आदर्शों की चरम परिणति मिलती है। इसके अनन्तर स्त्री-निंदा, मानस के वस्तु-विन्यास पर भी प्रकाश डाला गया है। वस्तु-विन्यास के सम्बन्ध में उनका कथन है-"हमारा कवि मूल कथानक अध्यात्म रामायण एवं बाल्मीकि रामायण से लेकर उसकी रूप-रेखा का अनुमान करते हुए बहुत कम हटता है। और फिर भी जब कभी और जहां कहीं वह हटता है वहां वह कलात्मकता ही प्रदर्शित करता है।" उन्होंने इस कथन की सार्थकता कई प्रमाणों से सिद्ध की है। संदर्भानुसार मानस के

उक्ति वैचित्र्य, गुण तथा स्वभाव चित्रण, कार्य व्यापार चित्रण, घटना तथा वस्तु चित्रण आदि विषयों पर विशिष्ट रूप से प्रकाश डाला गया है। इसी स्थान पर कवि की शैली पर भी प्रकाश डाला गया है इस संबंध में उनकी स्वीकारोक्ति स्पृहणीय है। "तुलसी की अनुपमेय शैली का सौंदर्य, उसका आर्जव, उसकी सुबोधिता, उसकी सरलता और चारुता, उसकी रमणी-यता और उसका लालित्य, और उसका प्रवाह मानस में एक रूप से पाप्त होता है।" अंत में डा० गुप्त का निष्कर्ष प्रशंसनीय है। उनकी कृतियों के नितांत मौलिक अंश के चरित्र-चित्रण, भाव-चित्रण, भाव विन्यास, नख-शिख कृति, कल्पना सृष्टि, उक्ति-वैचित्र्य तथा शैली आदि विविध विषयों में कलात्मक परिणामों का ऐसा बाहुल्य प्रस्तुत करता है जो असाधारण है। हमारे कवि की ये विशेषताएँ उसे सत्संग के नैसर्गिक प्रतिभा सम्पन्न महान कलाकारों में स्थान देने के लिये पर्याप्त कारण उपस्थित करती हैं।"

अंतिम अध्याय में तुलसी के आध्यात्मिक विचारोंका गंभीर गवेषण प्रस्तुत किया गया है। इस विवेचना में 'मानस' के ही आध्यात्मिक विचारों को ही अध्ययन का आधार नहीं बनाया गया वरन् 'विनय-पत्रिका', 'सतसई', बरवै, कवितावली, दोहावली तथा वैराग्य संदीपनी में यत्र-तत्र बिखरे विचारों को यथास्थान विवेचित किया गया है। अंत में मानस के आधार ग्रंथ 'अध्यात्म' के धार्मिक विचारों से तुलनात्मक अध्ययन करके अंत में कुछ निष्कर्षों में डा० गुप्त पहुंचे हैं। इस सम्पूर्ण गवेषणा के आधार पर उन्होंने यह स्वीकार किया है। मानस जितना आध्यात्मिक सिद्धांतों से सम्पन्न है उतनी विनय पत्रिका नहीं, क्योंकि मानस एक आध्यात्मिक एवं दार्शनिक विचार

प्रधान महाकाव्य है जबकि 'विनय पत्रिका' विश्वास एवं उद्-गार प्रमुख गीति काव्य मात्र है। तुलसी के दार्शनिक सिद्धांत जितना आध्यात्म रामायण से प्रभावित हैं उतना वे और किसी दार्शनिक ग्रंथ से नहीं।" इस विवेचना से स्पष्ट है कि डा० गुप्त का अध्ययन अत्यन्त गम्भीर एवं सूक्ष्म है परन्तु उन्होंने दार्श-निक विवेचना को इतनी छोटी छोटी इकाइयों में विभक्त कर दिया है कि उसकी पूर्ण अन्वित का अनुमान लगाना कठिन है। इस संपूर्ण शोध प्रबन्ध में जिन वैज्ञानिक गवेषणा की सारणियों में होकर डा० गुप्त ने अपना शोध कार्य प्रस्तुत किया है वह निश्चय ही में अप्रतिम एवं स्पृहणीय है। उनके पूर्ववर्ती या पारवर्ती किसी भी समीक्षक द्वारा इस रूप का प्रभूत परीक्षण नहीं किया गया है। इस विवेचना की एक बात जो सुरुचि पूर्ण पाठकों को खलती है कि आध्यात्मिक विचारों को छोटे-छोटे विभिन्न सूत्रात्मक परिगणना में बांधा गया है जो पूर्ण दार्शनिक अन्वित देने में सक्षम प्रतीत नहीं होते। इस प्रकार से उनकी गवेषणा कहीं कहीं पर परिगणना मात्र बनकर रह गई है जहाँ भावात्मक गवेषणात्मक प्रवृत्ति का अभाव खटकने सा लगता है।

राम कथा की उत्पत्ति एवं विकास

(डा. कामिल बुल्के, १६४६)

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध सन् १६४६ में प्रयाग विश्वविद्यालय के तत्वाधान में डा० कामिल बुल्के द्वारा डी० फिल्० उपाधि हेतु प्रेषित किया गया था। इसका प्रकाशन सन् १६५० में हिन्दी परिषद प्रयाग से कतिपय संशोधनों के बाद हो गया था। इसकी सम्पूर्ण सामग्री चार खण्डों में है जिसका विस्तार २१ अध्यायों के भीतर है। प्रथम भाग में प्राचीन राम कथा पांच अध्यायों में रखी गई है द्वितीय खण्ड में राम कथा की उत्पत्ति चार अध्यायों में, तृतीय भाग में अर्वाचीन राम कथा, साहित्य का सिंहावलोकन चार अध्यायों में, चतुर्थ भाग में राम-कथा का विकास सात अध्यायों में विवेचित कर अंतिम अध्याय में सम्पूर्ण अध्ययन का निष्कर्ष प्रस्तुत किया गया है। इस सम्पूर्ण विवेचना में सम्पूर्ण विश्व में बिखरी हुई रामकथा के सूत्रों को प्रयत्न साध्यढंग से संयोजित करने का प्रयास किया गया है। भारत तथा इसके पड़ोसी देशों के साहित्य में रामकथा की सर्वप्रियता एशिया के सांस्कृतिक इतिहास का महत्वपूर्ण पक्ष है।

प्रथम खण्ड के प्रथम अध्याय में वैदिक साहित्य में राम-कथा के श्रोतों की खोज की गई है। द्वितीय अध्याय में बाल्मीकि रामायण में राम कथा का स्वरूप प्रस्तुत किया गया है। तृतीय अध्याय में महाभारत में रामकथा के स्वरूप को सामने रखा गया है। डाक्टर बुल्के ने चतुर्थ अध्याय में बौद्ध एवं जातक कथाओं के अंतर्गत रामकथा का अन्वेषण किया है। प्रथम खंड

के अन्तिम अध्ययन में जैन साहित्य में व्याप्त रामकथा के स्वरूप को संकलित किया गया है। द्वितीय भाग के अध्याय षष्ट में दशरथ जातक की कथाओं में रामकथा की उत्पत्ति का स्वरूप खोजा गया है। इसके अंतर्गत दशरथ की जातक रामकथा 'पालीत्रिपिटक' और रामायण तथा उसमें बौद्ध प्रभावों का भी अंकन किया गया है। सप्तम अध्याय में रामकथा के ऐतिहासिक आधार तथा वानर एवं राक्षसों के प्रकरणों पर व्यापक प्रकाश डाला गया है। अष्टम अध्याय में प्रचलित बाल्मीकि रामायण के मुख्य प्रक्षेपों का विवेचन किया गया है। डाक्टर बुल्के ने इस खण्ड के अन्तिम अध्याय में रामकथा के प्रारम्भिक विकास में बालकांड से उत्तरकांड तक के अवतारवाद के सिद्धान्तों पर व्यापक दृष्टि डाली है। तृतीय भाग अर्वाचीन रामकथा साहित्य का सिंहावलोकन प्रस्तुत करता है। इसके अंतर्गत दशम अध्याय में संस्कृत के आध्यात्मिक साहित्य में रामकथा के सूत्रों की खोज की गई है। इसमें विशेष प्रकार से पौराणिक साहित्य का मंथन हुआ है। अध्याय एकादश में संस्कृत ललित साहित्य में रामकथा के श्रोतों का अन्वेषण किया गया है। इसके अंतर्गत संस्कृत के महाकाव्य रघुबंश, भट्टिकाव्य, जानकी हरण, रामायण मंजरी तथा दशावतार चरित आदि तथा विभिन्न नाटकों का अवलोकन किया गया है। द्वादस अध्याय में आधुनिक भारतीय भाषाओं में रामकथा की उत्पत्ति एवं विस्तार के सूत्र खोजे गये हैं। इस खण्ड के अंतिम अध्याय में विदेशों में रामकथा का स्वरूप निर्धारित किया गया है। इसके अंतर्गत तिब्बती, हिन्देशिया, जावा, स्याम, ब्रह्मदेश में बिखरी रामकथा का संकलन किया गया गया है।

अंतिम खण्ड में रामकथा का काण्ड क्रमानुसार विकास एवं विस्तार दिखाया गया है तथा अध्याय चौदह, पंद्रह, सोलह,

सत्रह, अट्ठारह, उन्नीसवें तथा बीसवें में क्रमशः बाल, अयोध्या, अरण्य. किष्किन्धा, सुन्दर, लंका तथा उत्तरकांड की कथा को विस्तार के साथ अध्ययन का विषय बनाया गया है। इस विवेचना में बाल्मीकि रामायण की कथा को विवेचना का आधार बनाया गया है। प्रसंगानुसार अन्य रामायणों की कथा से भी इनकी तुलना की गई है। अंत में इक्कीसवें अध्याय में शोध-कर्त्ता ने अपनी सम्पूर्ण गवेषणा का निष्कर्ष प्रस्तुत किया है। डाक्टर बुल्के के शोध की प्रमुख विशेषता इस बात में है कि उन्होंने सभी देशों में बिखरी हुई रामकथा में मौलिक एकता के दर्शन किये हैं। उनके विचार से रामकथा की व्यापकता, राम-कथाओं में मौलिक एकता तथा राम कथा के निरन्तर परिवर्तित स्वरूप का उल्लेख न करना ही वृहद् ग्रन्थ की मौलिकता है। यह रामकथा बौद्ध त्रिपिटक से प्रारम्भ होकर आज तक परि-वर्तित एवं संशोधित होती चली आई है। डाक्टर बुल्के के विचार से रामकथा का स्पष्ट स्वरूप बाल्मीकि रामायण में दृष्टिगत होता है। सम्पूर्ण भारतीय संस्कृति को राम-मय बनाने वाली कड़ी यही रामकथा ही है। प्राकृत से लेकर संस्कृत तक, आधुनिक भारतीय भाषाओं में तथा इसके अतिरिक्त विभिन्न देशों में इसकी लोकप्रियता किसी से छिपी हुई नहीं है। उनका यह कहना सत्य है कि विश्व साहित्य में ही सम्भवतः कोई कवि ऐसा होगा जो कि प्रभाव की दृष्टि से आदि कवि बाल्मीकि से तुलना कर सके। रामकथा के वैचित्र्य का मुख्य कारण डाक्टर साहब के विचार से बाल्मीकि रामायण पर विभिन्न प्रभाव हैं। इसके अतिरिक्त डाक्टर बुल्के ने रामकथा पर जैन, शैव, शाक्त तथा अन्य धर्मों का प्रभाव भी दिखाया है। अंत में इस विकास का सिंहावलोकन भी प्रस्तुत किया है। रामकथा अनेक रूप धारण करती हुई धीरे धीरे सम्पूर्ण भारतीय संस्कृति

के प्रतीक के रूप में हमारे सामने प्रस्तुत होती है। उसकी लोक-प्रियता एक दिन की प्राप्त की हुई वस्तु नहीं वह शताब्दियों शताब्दियों से अर्जित की जाने वाली वस्तु है। निश्चय ही इस कथा में आदर्श एवं कला का समन्वय हो गया है। शोध कर्त्ता के विचार से रामकथा में महान परिवर्तन होने पर भी सीता का पातिव्रत्य, राम का आज्ञा पालन, भरत-लक्ष्मण का भ्रातृ-प्रेम, दशरथ की सत्यसंधता, कौशिल्या का वात्सल्य समस्त राम-कथाओं में एक से मिलते हैं। वे रामकथा साहित्य के उज्जवल स्वरूप में भारतीय संस्कृति के आदर्शवाद को ही स्वीकार करते हैं। इसके अंत में राम कथा साहित्य कालक्रमानुसार तालिका ६०० ई० से १६००-१७०० तक के मध्य तक की प्रस्तुत कर एक महत्वपूर्ण कार्य किया गया है। इस प्रकार से रामकथा की उत्पत्ति एवं विकास का व्यापक विवेचन हमें इस शोध-प्रबंध में एक स्थान पर मिल जाता है।

तुलसीदास और उनका युग

(डा. राजपति दीक्षित, १६४६)

काशी विश्व-विद्यालय के तत्वावधान में सन् १६४६ में डाक्टर राजपति दीक्षित द्वारा डी० लिट् उपाधि हेतु यह शोध-प्रबन्ध प्रस्तुत किया गया था। इसका प्रकाशन सं० २००६ में ज्ञान मण्डल बनारस से हो गया। इसमें कुल १० अध्याय हैं। विषय प्रवेश में डाक्टर साहब ने अपने समय तक प्रस्तुत समीक्षा सामग्री का परिचयात्मक अध्ययन देते हुए यह सिद्ध कर दिया है कि तुलसी युग की सम्यक् व्याख्या एवं विवेचना का अभाव है। अध्ययन की दृष्टि से उन्होंने इन सभी समीक्षाओं एवं शोधों को आठ भागों में विभक्त किया है। (१) जीवन चरित संबंधी विचार (२) कृतियों की प्रामाणिकता और काल-क्रम सम्बन्धी विचार (३) कला सौष्ठव संबंधी विचार (४) भक्ति एवं उपासना संबंधी विचार (५) सामाजिक विचार (६) धार्मिक विचार (७) दार्शनिक विचार (८) आर्ष ग्रन्थ प्रभाव सम्बन्धी विचार। प्रथम परिच्छेद में तुलसीकी समकालीन परिस्थियों को पूर्ण-रूपेण विवेचित किया गया है। इसके अन्तर्गत डाक्टर साहब ने वर्णाश्रम धर्म की विशृंखलता, धार्मिक, सामाजिक एवं आर्थिक अशांति का विश्लेषण किया है इसी संदर्भ में उस युग की राजनीतिक, धार्मिक, साहित्यिक चेतना के साथ साथ पूर्ववर्ती तथा समसामयिक कवियों एवं प्रचारकों पर भी सम्यक् विवेचना प्रस्तुत की गई है। द्वितीय परिच्छेद में 'तुलसी सामाजिक मत' प्रस्तुत किया गया है। इसके अंतर्गत आदर्श राज्य,

राजा-प्रजा, वर्णाश्रम धर्म परायणता, पारिवारिक जीवन आदर्श, समाज में स्त्रियों के स्थान आदि विभिन्न महत्वपूर्ण शीर्षकों पर तुलसी के मत को गवेषित किया गया है।

तृतीय परिच्छेद में तुलसी की धर्म भावना पर प्रकाश डाला गया है। डाक्टर साहब के विचार से तुलसी के विचार आडम्बरहीन एवं साम्प्रदायिक संकीर्णता से हीन थे। उनके विचार से तुलसी ने अपने युग की दो प्रवृत्तियों बहुदेववाद तथा कृष्ण-सम्प्रदाय दोनों में उचित साम्य स्थापित किया है। उनका मत है कि तुलसी ने किसी नए मत या धर्म का प्रचार नहीं किया उन्होंने अपने धर्म का समस्त ताना-बाना हिन्दू सनातन धर्म से लिया है।

उनके धर्म में अहिंसावाद एवं मर्यादावाद का प्रधान पुट है। परिच्छेद चतुर्थ तुलसी की साम्प्रदायिकता पर विशेष प्रकार से प्रकाश डालता है। उनके विचार से हिन्दू धर्म की सर्वश्रेष्ठ विशेषता उसकी साम्प्रदायिकता है परन्तु तुलसी द्वारा प्रस्तुत साम्प्रदायिक विचार संकीर्ण एवं कट्टरता से बचे हुये हैं। राम का अनन्य भक्त होने की स्पृहा और राम भक्ति को सर्वोपरि स्वीकार करना ही उनकी साम्प्रदायिकता मानी जा सकती है। परिच्छेद पंचममें तुलसी की परम्परागत भक्ति के सिद्धांतों का वर्णन मिलता है। उनके विचार से तुलसी ने उसी भक्ति को स्वीकार किया है जो प्राचीन आचार्यों, पुराणों एवं अन्यान्य भक्तों द्वारा अनुमोदित थी। तुलसी की भक्ति का सांग निरूपण करके इसको समाप्त किया गया है। षष्ट परिच्छेद में तुलसी की उपासना पद्धति का स्पष्टीकरण किया गया है। यह पूर्णतः निर्विवाद सत्य है कि तुलसी के एक मात्र आराध्य राम थे। इन्हीं राम की प्रेम उपासना उन्हें काम्य थी। गोस्वामी जी ने

उपासना एवं भक्ति को अन्यान्योश्रय माना है। वे उसी उपासना को सर्वश्रेष्ठ मानते हैं जो वेद पुरान विहित है। डाक्टर साहब का मत है कि तुलसी की उपासना पद्धति में पूर्व की कई पद्धतियों का समाहार हो गया है। दादू एवं कबीर की पद्धति को छोड़कर और सभी पद्धतियों का समन्वय इसमें हैं। सप्तम परिच्छेद में तुलसी के दार्शनिक दृष्टिकोण को विवेचना का विषय बनाया गया है। डाक्टर साहब ने पूर्व समीक्षकों द्वारा तथ्यों का विवेचन करके यह सिद्ध कर दिया है कि सभी समीक्षकों का निर्णय एकांगी है और उनकी समस्त कृतियों को ध्यान में रखकर यह निर्धारित नहीं किया गया है। उनके विचार से तुलसी किसी धार्मिक सम्प्रदाय से बँधे हुये साम्प्रदायिक प्रवृक्ता नहीं थे। यह बात अवश्य है कि प्रसंगानुसार उन्होंने जटिल दार्शनिक सिद्धांतों को इतनी सरल एवं काव्यमय भाषा से व्यक्त किया है जो आसानी से हृदयंगम किये जा सकते हैं। उनके काव्य में माया, जीव, जगत, ईश्वर सम्बन्धी विचार सुगमता से सुस्पष्ट हो गए हैं। दार्शनिक सिद्धांतों की कसौटी में तुलसी के मत को कसकर डाक्टर साहब ने यह सिद्ध पाया है कि तुलसी का साधन मार्ग अद्वैत मत से भिन्न है परन्तु अधिकांश रूप में द्वैतमत से साम्य रखने वाले मत की प्रधानता मानस में पाई जाती है।

अष्टम अध्याय में तुलसी और प्राचीन राम काव्य का विकासात्मक अध्ययन मिलता है जो प्राचीन वाङ्मय वेदों से प्रारम्भ होकर वर्तमान साहित्य के रामकाव्य सबको अपने क्रोड़ में समेट लेता है। नवम परिच्छेद में तुलसी की संदर्भण कला पर विशेष रूप से मानस पर विचार व्यक्त किये गये हैं। डाक्टर साहब ने रामकाव्य को एक जलदहार के रूप में स्वीकार किया

है जिसको तुलसी ऐसे सिरमौर पटहार ने अपने कौशल विभिन्न काव्यांशरूपी मौक्तिकों से ऐसा संग्रथित किया है कि वह अनर्घ मानसरूपी हार निर्मित हो गया है। निष्कर्ष रूप में डाक्टर दीक्षित ने स्वीकार किया है। "विविध प्राचीन आर्यग्रन्थ पुष्पों से हमारे तुलसी मिलिन्द ने विशिष्ट भावों के मकरंद ग्रहणकर उसे अपनी नवोन्मेषकारिणी प्रभा के सहारे भव्यंतर भावों में परिणित कर अपने मानस मधुकोष में जिस प्रकार सन्निहित किया है वह अवर्णनीय है।" इस प्रकार से यह सम्पूर्ण ग्रंथ पूर्व की सभी समीक्षात्मक सामग्री का आंकलन प्रस्तुत करते हुये कतिपय विषयों में मौलिक चिंतन प्रस्तुत करने में सफल हुआ है। सम्पूर्ण शोध ग्रन्थ की विषय तालिका को देखकर यह प्रकट होता है कि शोधकर्त्ता अपने विवेच्य विषय से विषयान्तर होकर तुलसी के सभी पक्षों को स्पर्श करने के मोह को सम्वरण करने में असमर्थ रहा है।

—:०:—

रामचरित मानस का रचनाक्रम

(डा. शार्लोति वोदवील, १९५०)

प्रस्तुत शोध प्रबंध डॉ० वोदवील द्वारा पेरिस विश्वविद्यालय के तत्वावधान में पी-एच० डी० उपाधि हेतु सन् १९५० में प्रेषित किया गया था। इसका जर्मन भाषा में प्रकाशन हो चुका है। इस प्रसिद्ध शोध ग्रन्थ का भी अनुवाद हिन्दी में श्री जगवंशकिशोर बलवीर द्वारा प्रेषित किया गया जो कि Institute-Francis 'D' Indologie Pondcherry से सन् १९५९ में प्रकाशित किया गया था। इसका अर्ध भाग ही अनुवादित हो सका है। आशा है कि शीघ्र ही इसका शेष आधा भाग भी अनुवादित हो सकेगा। इस ग्रंथ के भूमिका भाग में डाक्टर वोदवील ने तुलसी की महानता, उनकी लोकप्रियता पर प्रकाश डाला है। उन्होंने शेक्सपियर एवं तुलसी को एक काल के कवि मानकर उन दोनों का तुलनात्मक अध्ययन किया है। इसी स्थान में कवि की संक्षिप्त जीवनी पर भी प्रकाश डाला गया है। उन्होंने 'मानस' की सबसे प्राचीनतम एवं प्रामाणिक प्रति काशी नरेश वाली प्रति मानी है। उन्होंने तुलसी के 'मानस' का मूलाधार वाल्मीकि रामायण स्वीकार करते हुए उनमें साम्य एवं वैषम्य स्थापित किया है। उनका यह भी कथन सही है कि ग्रंथकार ने अपने आर्ष ग्रन्थों का उल्लेख प्रस्तावना भाग में कर दिया है। अध्यात्म रामायण का प्रभाव मानस पर उन्हें मान्य है और इन दोनों ग्रन्थों का तुलनात्मक अध्ययन करके उन्होंने स्वीकार किया है कि कवि ने मानस का ढांचा अध्यात्म से ही लिया है

परन्तु इस ग्रन्थ की अधिकांश छाया मानस की स्तुतियों एवं गीताओं में पड़ी है। तीसरा मूलाधार वे शिव पुराण मानती हैं। इसके बाद 'प्रसन्न राघव', 'योग वशिष्ठ', 'अद्भुत रामायण', 'भुशुण्डि रामायण' का प्रभाव भी उन्हें स्वीकार है। उनका यह अनुमान सत्य है कि मानस का निर्माण एक बैठक में नहीं हुआ वरना कई चरणों में हुआ है। 'मानस' में परस्पर विरोधी आध्यात्मिक विचारों के सांख्य में उनका कथन है कि तुलसी भारतीय समन्वयवादी दृष्टि को लेकर ही इस प्रकार के वैभिन्य को अपना सके हैं। अंतमें अपने शोध का मूल कारण निर्धारित करते हुये उन्होंने बताया है कि उनका लक्ष्य मानस के मूलाधारों का श्रोतात्मक अध्ययन करके उसके रचनाक्रम के वैज्ञानिक स्वरूप को निर्धारित करना है। इसमें तुलसीके प्रेरणा श्रोत, उनका प्रयोजन उनके सफलता के कारणों पर भी विचार किया गया है। इस भूमिका के अतिरिक्त रामायण के कांडों के अनुसार सात अध्यायों में उनके श्रोतों का अध्ययन करने हेतु सामग्री संजोई गई है।

प्रथम अध्याय में बालकांड के आमुख का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इसको डॉ० साहिबा ने छः उपविभागों में बाँटा है। (१) आमुख(१-४३), (२) शिवचरित (४४-१०४), (३) शिव-पार्वती संवाद (१०५-१२०), (४) अवतार के कारण (१२१-१८४) (५) राम जन्म तथा बालपन (१८५-२०५), (६) राम का यौवन तथा विवाह (२०६-३६१) उन्होंने इस भाग में प्रस्तुत मानस निर्माण तिथि, उसके श्रोत, उनके प्रयोजन आदि पर विस्तृत व्याख्या दी है। इस प्रकरण में दिव्य एवं मर्त्य दोनों प्रकार के लोगों की बंदना की गई है। इस अध्ययन के निष्कर्ष में डॉक्टर बोदवील ने स्वीकार किया है कि रामकथा का प्रसार चार श्रोता

एवं वक्ताओं के मध्य हुआ है परन्तु उनमें अधिकांश रूप में शिव-पार्वती एवं याज्ञवल्क्य एवं भरद्वाज ही अधिक आये हैं। अरण्य से लंका तक दोनों कथाकार बारी बारी कथा कहते चले हैं। डॉ० गुप्त द्वारा रचना तिथि के विवेचन में जो तथ्य उपस्थित किया गया है उसे वे स्वीकार नहीं करती हैं। समय अधिक होने से दिवस भ्रम होना ही उन्हें मान्य है। वे रामनवमी के दिन सं० १६३१ में इस ग्रंथ का आरम्भ दिन स्वीकार करती हैं। इसके अनन्तर रामकथा के दिव्य उद्गम तथा रामावतार की कथा का विधिवत् परीक्षण किया गया है। द्वितीय अधिकरण में शिवचरित, तृतीय में शिव-पार्वती संवाद, चतुर्थ में अवतार का कारण, पंचम में राम का जन्म एवं शैशव तथा अंत में राम की युवावस्था तथा विवाह के प्रकरणों की विधिवत् व्याख्या प्रस्तुत की गई है। डॉ० बोदवील एक ही कांड में दो विवाहों के संयोजन को कथा दोष मानती हैं। इससे उन्हें यह भ्रम हुआ है शिव-चरित बाद में जोड़ा हुआ अंश है जिससे सम्पूर्ण कांड के संयोजन में व्यतिक्रम उत्पन्न हुआ है। इस प्रकार मानस का बालकांड सम्पूर्ण कविता के विस्तार में अनुपातातीत हो गया है और उनके विचार से राम तथा सीता के प्रेम को जो महात्म्य मिलना चाहिये वह नहीं मिल सका।

सप्तम अधिकरण में मानस के अयोध्या कांड की कथा के श्रोतों का अन्वेषण किया गया है। इस कांड के पूर्वार्द्ध में बंदना वनगमन, राम की वन यात्रा का हृदय द्रावक वर्णन है और उत्तरार्द्ध में भरत का अयोध्या गमन, उनका वनगमन, चित्रकूट आगमन तथा उनकी वापसी का वर्णन आता है। इसे डॉक्टर साहिबा साहित्य कथाक्रम के निर्वाह का सर्वोत्तम काण्ड मानती हैं। इसमें कथा का सामंजस्यपूर्ण वर्णन है। इसके बाद

के तीन कांड अत्यन्त संक्षिप्त एवं वर्णनात्मक होकर ही रह गये हैं। इसमें राम का चित्रण मानव नायक एवं देवनायक रूप में हुआ है। इसका विवेचन करने के बाद यह अनुवाद ग्रन्थ समाप्त होता है। शेष शोध ग्रन्थ का प्रकाश नहीं हुआ। इसका अनुवाद होना व्यापक प्रसार एवं प्रचार के लिए आवश्यक है। डॉ॰ साहिबा ने रामचरित मानस की सम्पूर्ण कथा वस्तु का अध्ययन करने के बाद इसके रचनाक्रम के तीन सोपान स्वीकार किए हैं। (१) रामचरित (२) शिवचरित (३) भुशुण्डि रामायण। रामचरित की प्रथम पाण्डुलिपि के विषय में डॉ॰ गुप्त का ही मत उन्हें स्वीकार है जिसके अनुसार इसमें बालकांड उत्तरार्द्ध (१८४-३६१) तथा सम्पूर्ण अयोध्याकांड शामिल है। इसमें उनका विचार है कि इस सामग्री के अतिरिक्त आरण्यकांड का आरम्भ (१-६) तथा बालकांड की प्रस्तावना का पूर्वार्द्ध (१-२९) भी रहा होगा। प्रस्तावना के पूर्वार्द्ध में राम का कहीं उल्लेख नहीं है और न किसी संवाद का ही कवि वक्ता है। बाल काण्ड (१८४-२०५) के कई स्थलों पर शिव वक्ता के रूप में आये हैं। (२) शिव चरितः—डॉ॰ साहिबा का विचार है कि मानस का प्रथम लेखन रामचरित को तैयार करके कुछ समय के लिये रुक गया था और बाद में उन्होंने अपनी रचना को शिव-पार्वती के संवाद के रूप में प्रस्तुत करना चाहा है। उनका कथन है कि यह ग्रंथ बाद में साम्प्रदायिक रूप धारण कर लेता है। सम्पूर्ण प्रथम पांडुलिपि के अतिरिक्त इस रामायण में बालकांड (१०५-१८४) आरण्य से युद्ध कांड तक, उत्तरकांड का पूर्वार्द्ध। (१-५२) भी शामिल कर लिया गया है। इस सम्बन्ध में डॉ॰ बोदवील का विचार है कि शिव रामायण प्रारम्भ करते समय कवि के मन में भुशुण्डि को वक्ता रूप में रखने की बात नहीं आई थी अतः बालकांड (पूर्वार्द्ध) तथा बालचरित में उनका उल्लेख

अन्य पुरुष के रूप में किया गया है। द्वितीय पाण्डु-लिपि के अन्य कान्डों में वक्ता के रूप में जो भुसुण्डि के उल्लेख मिलते हैं उससे कवि पर भुसुण्डि रामायण के प्रभाव का स्पष्ट पता चलता है। यहां तक कवि ने उस रामायण का एक विस्तृत प्रसंग जोड़ दिया है (१२-२३)। डॉ० साहिबा के विचार से शिव का उल्लेख अन्य पुरुष के रूप में हुआ है। (३) भुशुण्डि-रामायणः—उनका कथन है कि शिव रामायण सात कांडों में विभक्त थी परन्तु कवि पर इस रामायण का इतना प्रभाव पड़ा कि बाद में उन्हें भुशुण्डि गरुड़ सम्वाद को अपनी रचना में स्थान देना पड़ा। डॉ० साहिबा का मत है कि कवि ने अपने काव्य की एकता सुरक्षित रखने के लिए अंत में शिव को प्रधान वक्ता के रूप में मान लिया है और प्रस्तावना के उत्तरार्द्ध में मुक्त कंठ से कवि ने स्वीकार किया है कि शिव ही मानस के रचयिता हैं। इस प्रकार इस सम्पूर्ण ग्रन्थ में मानस के श्रोता एवं वक्ता की श्रृंखला का गंभीरता पूर्वक अध्ययन कर एक निश्चित तिथि देने का प्रशंसनीय प्रयत्न किया है। इस ग्रन्थ के सही ज्ञान एवं सही महत्व से में यह बात विशेष प्रकार से विचारणीय है कि इसका पूर्ण अनुवाद हिन्दी या अंग्रेजी में कराया जावे तभी सही रूप में इसका महत्व समझा जा सकता है। फिर भी एक पाश्चात्य शोधकर्ता के रूप में डॉ० वोदवील ने तुलसी के अध्ययन को जो प्रगति दी है उसे हम अवश्य ही प्रशंसनीय मानते हैं।

तुलसी दर्शन

(डा० रामदत्त भारद्वाज, १९५३)

प्रस्तुत शोध-प्रबंध अंग्रेजी भाषा में आगरा विश्वविद्यालय के दर्शन विभाग के तत्वावधान में डा० रामदत्त भारद्वाज द्वारा पी-एच० डी० उपाधि हेतु प्रेषित किया गया। इसमें कुल १४ अध्याय हैं। यह अभी तक अप्रकाशित है। डा० साहब ने विषय की समीचीनता को सिद्ध करते हुए यह स्वीकार किया है कि निस्संदेह तुलसी पर विभिन्न धार्मिक ग्रंथों का प्रभाव पड़ा था परन्तु वे किसी मत के प्रतिपादक नहीं बने। उन्होंने उत्तम मतों के सिद्धान्तों को एकत्र करके एक नवीन मिश्रण तैयार किया है। इस शोध में कोई नई मौलिक गवेषणा प्रस्तुत नहीं की गई क्योंकि इसके पूर्व के दो शोध प्रबन्धों ने इस विषय में विपुल सामग्री पर प्रकाश डाल दिया था। इस ग्रन्थ में पिष्ट पेषण ही अधिक है। यहाँ तक कि इस ग्रंथ के अध्यायों के शीर्षक पूर्णतः 'थियोलाजी आफ तुलसीदास' शोध प्रबंध से मिलते हैं। प्रथम परिच्छेद में तुलसी की जीवनी पर संक्षिप्त रूप से प्रकाश डाला गया है। इसमें डा० साहब ने सोरों में तुलसी का जन्म स्थान स्वीकार किया है। दूसरे अध्याय में विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों के दार्शनिक सिद्धान्तों की मीमांसा प्रस्तुत की गई है। तुलसी ने चार प्रमाण माने हैं (१) प्रत्यक्ष (२) प्रमाण (३) शब्द (४) अनुभव। उन्होंने स्वीकर किया है कि भारतीय दर्शन के विभिन्न श्रोत हैं जिसमें मुख्य रूप से १० मतों का प्रतिपादन हुआ है। उनके विचार से तुलसी ने

प्रत्यक्ष से अनुमान को अधिक स्थान दिया है तथा ज्ञान एवं विज्ञान में इन तीनों का समन्वय माना है। तृतीय अध्याय में ब्रह्म का स्वरूप निरूपित किया गया है। इसमें तुलसी द्वारा प्रतिपादित ब्रह्म के सिद्धान्तों का भली भाँति प्रतिपादत किया गया है। इस अध्ययन में विनय पत्रिका एवं मानस को भी विषय बनाया गया है। इस विवेचना के आधार पर उन्होंने स्वीकार किया है कि निगुण एवं सगुण दोनों ब्रह्मों का समाहार तुलसी ने राम के व्यक्तित्व में दिखा दिया है।

चतुर्थ अध्याय में माया के भ्रमात्मक स्वरूप का विवेचन है। माया की विशेषताएँ, ब्रह्म एवं माया का सम्बन्ध इसमें विशेष रूप से दर्शाया गया है। इस अध्याय में भी दो भाग हैं। प्रथम में तुलसी पूर्व साहित्य में माया के स्वरूप का विवेचन किया गया है तथा दूसरे में तुलसी के द्वारा माया का विशेष रूप से विवेचन किया गया है। पंचम अध्याय ब्रह्मा, विष्णु, महेश के महत्व पर प्रकाश डालता है। इसके अन्तर्गत बड़े देवताओं के साथ साथ इतर छोटे देवताओं के महत्व को भी स्थापित किया गया है। अध्याय षष्ठ में अवतारवाद पर विचार किया गया है। इस अध्याय में डा० कारपेण्टर के अनुसार ही अवतार के अर्थ, इसके कारण तथा इसके उद्देश्य की विवेचना भी की गई है। सप्तम अध्याय विभिन्न देवी, देवताओं के महत्व से सम्बन्धित है जिसमें ब्राह्मण से लेकर ग्राम देवी एवं देवताओं तक का विवेचन किया गया है। आठवें अध्याय में आचार्यों द्वारा प्रतिपादित जीव विषयक दर्शन की कसौटी में तुलसी की धारणाओं का परीक्षण किया गया है। इसमें भी दो भाग हैं (१) पृष्ठभूमि (२) तुलसी के जीव सम्बन्धी विचार। इस गवेषणा के सारांश

रूप में उन्होंने स्वीकार किया है कि तुलसी ने जीवों को दो दृष्टियों से देखा है (१) मनोवैज्ञानिक दृष्टि से (२) आध्यात्मिक दृष्टि से। इन वर्णनों में तुलसी शास्त्र एवं वेदान्त से अधिक प्रभावित हैं और न्याय वैषेशिक एवं मीमांसा से विषमता रखते हैं। अध्याय नवम् मुक्ति सम्बन्धी विचारणा पर प्रकाश डालता है। तुलसी ने दो प्रकार की मुक्तियों का वर्णन किया है (१) विविध मुक्ति (२) जीवन मुक्ति। तुलसी ने मुक्ति को सर्वोच्च लक्ष नहीं स्वीकार किया। ज्ञानी मुक्ति चाहता है और भक्त अनपायनी भक्ति चाहता है। दशम अध्याय मोक्ष के साधनों का विश्लेषण करता है। इसकी सम्पूर्ण सामग्री तीन भागों में संजोई गई है (१) भारतीय दर्शनों के आधार पर विविध मोक्ष उपायों की पृष्ठ भूमि (२) ज्ञान, कर्म, पुनर्जन्म सम्बन्धी विचार (३) भक्ति का प्रपत्ति मार्ग।

एकादशम् अध्याय रामभक्ति के विकास से सम्बंधित है। इसके भी तीन भाग हैं (१) रामभक्ति के विकासात्मक स्वरूप का अध्ययन (२) राम का स्वरूप (३) राम की भक्ति। इन तीनों शीर्षकों के अन्तर्गत राम भक्ति के विकास एवं स्वरूप का विधिवत् अध्ययन प्रेषित किया गया है। बारहवें अध्याय में तुलसी के कर्मवाद, पाप-पुण्य की भावना, वर्णाश्रम तथा नारी भावना पर प्रासंगिक रूप से प्रकाश डाला गया है। तेरहवें अध्याय में तुलसी के मनोविज्ञान विषयक विचारों की मीमांसा की गई है। डा० साहब ने तुलसी को मनोविश्लेषणवाद के सिद्धान्त का प्रथम प्रयोग कर्त्ता माना है। कवि ने इसे 'मानस गुनी' के नाम से सम्बोधित किया है। उनका कथन है कि विरेचन का सिद्धान्त मानस में ढूंढा जा सकता है।

अंतिम अध्याय में तुलसी के राजनीति सम्बन्धी विचारों का अध्ययन किया गया है। इस समस्त अध्ययन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इस शोध प्रबन्ध में तुलसी के सर्व पक्ष गवेषण का प्रयत्न किया गया है और विषय से कई स्थानों में शोधकर्त्ता दूर पड़ गये हैं। यह हम पूर्व स्वीकार ही कर चुके है कि यह ग्रन्थ कारपेण्टर के शोध प्रबंध से बहुत दूर तक प्रभावित है। यहाँ तक अध्याय तृतीय, चतुर्थ, पंचम, षष्ठ, सप्तम, नवम्, दशम्, एकादश के श्रोत डा० कारपेण्टर के शोध प्रबंध में खोजे जा सकते हैं। इस ग्रन्थ के कुछ मौलिक अध्यायों का प्रकाशन शोधकर्त्ता के डी० लिट० शोध प्रबंध में हो गया है। इस ग्रन्थ की यह एक विचित्रता है कि डा० भारद्वाज ने अपने सभी उद्धरण अंग्रेजी में ही दिए है जब कि डा० कारपेण्टर ने सभी उद्धरण हिन्दी में ही दिए हैं।

═══

तुलसी की भाषा

(डा० देवकीनन्दन श्रीवास्तव, १९५३)

प्रस्तुत शोध प्रबंध डा० देवकीनन्दन श्रीवास्तव द्वारा सन् १९५३ में लखनऊ विश्वविद्यालय के तत्वावधान में पी-एच० डी० उपाधि हेतु प्रेषित किया गया था। उसका प्रकाशन लखनऊ विश्वविद्यालय की ओर से १९५८ में हुआ है। इसमें कुल पाँच अध्याय हैं। विषय प्रवेश में डा० साहब ने अपने विषय की समीचीनता को सिद्ध किया है। उन्होंने पूर्व समीक्षकों के कार्यों का निर्देश करके यह स्वीकार किया है कि तुलसी की भाषा का वैज्ञानिक सर्वाङ्गीण अध्ययन उनके युग तक नहीं किया गया था इसी कार्य की पूर्ति इस शोधप्रबन्ध में की गई है। इस प्रकार के शोध का सर्वप्रथम प्रयास डा० साहब ने किया था इसलिए उन्हें स्वयं मौलिक रूप से सामग्री के अध्ययन, परीक्षण एवं विषय विभाजन के लिए स्वतंत्र मार्ग चुनना पड़ा है। प्रथम अध्याय विषय प्रवेश की पूर्व पीठिका का कार्य करता है। डा० भागीरथ मिश्र के विचार से प्रथम अध्याय का विशेष महत्व है क्योंकि इसमें इस युग की लोक भाषा के प्रसार एवं प्रचार को प्रोत्साहन दिया गया है। भाषा प्रचार का तुलसी द्वारा किया गया अभियान निश्चय ही प्रशंसनीय कार्य माना जा सकता है। इस आंदोलन का नेतृत्व नामदेव, सूरदास कबीर, विद्यापति ने पूर्व किया था जिसमें तुलसी का भाषा सम्बन्धी समन्वयी दृष्टिकोण सबसे अग्रगण्य माना जा सकता है। अन्त में डा० साहब ने यह सिद्ध किया है कि तुलसी की दृष्टि में जनहित के लिए साहित्य रचना जीवित जन भाषा

का प्रयोग प्रशंसनीय है। द्वितीय अध्याय में भाषा की व्यवहारिक विवेचना है जिसके अन्तर्गत तुलसी की समस्त रचनाओं में उपलब्ध शब्दावली का विश्लेषण एवं परीक्षण हिन्दी व्याकरण की परिधि में किया गया है। इस विवेचना में पर्याप्त मौलिक गवेषणा मिलती है जो कवि की व्याकरण विषयक मान्यताओं के निर्धारण में तथा व्याकरण रूपों के विवेचन में दिखाई पड़ती है। तृतीय अध्याय में तुलसी के काव्य का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इसके अन्तर्गत समस्त तुलसी की रचनाओं में उपलब्ध विविध भाषाओं एवं बोलियों के प्रयोगों का विश्लेषण किया गया है। इसी अध्याय में तुलसी के ध्वनि समूह का अलोचनात्मक अध्ययन करके उनकी शब्दावली का संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश आदि विभिन्न वर्गों में बांटकर अध्ययन किया गया है।

चतुर्थ अध्याय में तुलसी के कलापक्ष पर भाषा वैज्ञानिक दृष्टि कोण से प्रकाश डाला गया है। इसी के अन्तर्गत शब्द शक्ति, ध्वनि, गुण, रीति, अलंकार आदि का अध्ययन काव्य शास्त्रीय दृष्टि से किया गया है। सामान्य कला पक्ष के विवेचन के अन्तर्गत तुलसी के वाक्चातुर्य, संवादों एवं स्तुतियों की शब्दावली, उनकी शब्द मर्यादा, लोकोक्तियों के प्रयोग कौशल आदि को अनेक दृष्टियों से विवेचित किया गया है। पंचम अध्याय श्री डा० भगीरथ मिश्र के विचार से कम महत्व पूर्ण नहीं है। इसमें सांस्कृतिक एवं सामाजिक संकेतों से युक्त शब्दावली का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। तुलसी की समस्त रचनाओं में उपलब्ध शब्दावली के आधार पर तात्कालिक सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों से सम्बंधित संकेतों को खोलने का प्रयास

इसमें सन्निहित है। अंत में तुलसी के उन शब्दों का वर्गीकरण किया गया है जिसमें लोक संस्कृति के संकेत सन्निहित हैं। अन्तिम अध्याय में प्रस्तुत शोधप्रबन्ध का उपसंहार प्रेषित किया गया है। इस अध्ययन के निष्कर्ष में उन्होंने तुलसी को भाषा के सम्राट के रूप में प्रतिष्ठित किया है। इसके अन्त में उन्होंने दो परिशेष भी संलग्न किए हैं जिनमें कतिपय निष्कर्ष खोज निकाले गए हैं जिससे इस अध्ययन की उपादेयता और अधिक बढ़ गई है। परिशिष्ट प्रथम में भाषा के सर्वेक्षण के आधार पर तुलसी की रचनाओं को तीन वर्गों में बाँटा गया है। (१) पूर्वी अवधी का वर्ग (२) पश्चिमी अवधी का वर्ग (३) बैसवाड़ी अवधी का वर्ग। द्वितीय परिशेष उन संकेतों को निष्कर्ष रूप में प्रस्तुत किया गया है जिनसे प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से तुलसी की जीवनी तन्तु निर्मित करने में महत्व पूर्ण योग दे सकते हैं। उनका प्रथम निष्कर्ष है कि तुलसी की अधिकांश रचनाएं चूंकि अवधी में हुई है इसलिए तुलसी का अधिक समय अवधी क्षेत्र में अर्थात् राजापुर में व्यतीत होता हुआ प्रतीत होता है। (२) तुलसी की कवितावली श्रीकृष्ण गीतावली, दोहावली, गीतावली शुद्ध ब्रज की रचनाए हैं अस्तु ब्रज भाषा क्षेत्र से उनका परिचय होना सिद्ध होता है। (३) गोस्वामी जी की भाषा में उत्कृष्ट संस्कृत एवं जन भाषा के शब्द मिलते हैं अस्तु उनके आधार पर तुलसी एक संस्कृत के प्रकांड ज्ञाता सिद्ध होते हैं। (४) रचनाओं के आधार पर तुलसी एक पर्यटक सिद्ध होते हैं। (५) रचनाओं में ऐसे संकेत मिलते हैं जिससे यह सिद्ध होता है कि तुलसी एक अभिजात कुल में जन्मे थे तथा उनका प्रारम्भिक एवं अन्तिम जीवन अत्यन्त दुखमय था। (६) समस्त रचनाओं के अध्ययन के आधार पर राजापुर जीवन विषयक जीवन वृत से अधिक सोरों

विषयक जीवन वृत की अधिक पुष्टि होती है। इस प्रकार से सम्पूर्ण रूप में डा० श्रीवास्तव द्वारा प्रस्तुत यह शोधप्रबन्ध एक विशिष्ट अभाव को पूर्ण करता हुआ बहुत से महत्व पूर्ण निष्कर्ष हमारे सामने उपस्थित करता है जो तुलसी के कृतित्व एवं व्यक्तित्व के निर्धारण में बहुत कुछ योग दे सकते हैं।

रामायण (मानस) के साहित्यिक श्रोत

(डा० सीताराम कपूर, १६५५)

डॉ० सीताराम कपूर द्वारा सन् १६५५ में आगरा विश्व-विद्यालय के तत्वावधान में प्रस्तुत शोध प्रबंध पी.एच डी. उपाधि हेतु प्रेषित किया गया था। यह अभी तक अप्रकाशित है। इसमें कुल पांच अध्याय हैं। इस ग्रंथ की भूमिका भाग में डाक्टर साहब ने स्वीकार किया है कि तुलसी का मानस समस्त भारतीय संस्कृति की विचारधारा का सार है। वह वस्तुतः वैदिक साहित्य, विभिन्न पुराणों, आगमों, प्रबंध काव्यों, नाटकों एवं स्मृतियों आदि की सामग्री से सरसतापूर्ण निर्मित है। डाक्टर कपूर ने तुलसी की इसी संदर्भण कला को अपने शोध का विषय बनाया है क्योंकि किसी शोध-कर्त्ता ने उनके पूर्व इस पर इतनी व्यापकता एवं विशदता एवं वैज्ञानिक तर्कों के आधार पर अध्ययम नहीं किया था। प्रथम अध्याय प्रस्तावना के रूप में दिया गया है। इसमें प्रमुख रूप से भारतीय जीवन में राम का स्थान, राम कथा की लोकप्रियता, राम कथा के संक्षिप्त इतिहास का पर्यावलोचन, तुलसी पूर्व राम साहित्य मानस के साहित्यिक श्रोत आदि की व्याख्या सौंक्षिप्त रूप में प्रस्तुत की गई है। द्वितीय अध्याय से लेकर पंचम तक तुलसी के साहित्यिक श्रोतों का विधिवत् परीक्षण किया गया है। इस परीक्षण में मूल श्रोतों का तुलनात्मक अध्ययन करके मानस की समीक्षात्मक व्याख्या प्रस्तुत की गई है। द्वितीय अध्याय में मूल श्रोतों से तुलसी ग्रहीत शब्दों का अध्ययब किया गया है। इसमें पद ग्रहण, पाद-ग्रहण, अर्थ-ग्रहण एवं व्रत-ग्रहण, की तर्क संगत

समीक्षा व्यापक रूप से डॉ० कपूर ने की है। शब्द ग्रहण की विवेच्य सामग्री का बाहुल्य होने के कारण उसका शेष अंश परिशिष्ट में जोड़ा गया है। तृतीय अध्याय में अर्थग्रहण के विविध शास्त्रीय रूपों का वर्णन करते हुये संस्कृत के आधार ग्रन्थों के उन अंशों की विपुल सामग्री संकलित की है जो मानस के अर्थ ग्रहण की परिसीमा में माने जा सकते हैं। श्रोतों की खोज में उन्होंने मानस की कविता को तीन भागों में विभक्त किया है। (१) अन्ययोनि (२) निहूहूत (३) अयोनि। डॉ० कपूर ने प्रथम वर्ग की विवेचना में यह सिद्ध किया है कि मानस के कतिपय अंश पूर्णतः दूसरे कवियों के भावानुवाद मात्र हैं। डॉ० कपूर ने इन वर्गों को विभिन्न शास्त्रीय उपवर्गों में बाँटकर पुष्ट प्रमाणों द्वारा यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि तुलसी की संदर्भण शक्ति अपूर्ण थी और अंत में उन्होंने अर्थग्रहण की विभिन्न ढंगों से इस प्रकार सामग्री का ग्रहण किया है कि उनकी कविता हीरे की भांति चमकने लगी है।

चतुर्थ अध्याय में पूर्व के अर्थ-ग्रहण की दूसरी शाखा का परीक्षण किया गया है इसमें तृतीय अध्याय वर्णित अर्थग्रहण के तीसरे प्रकार के अर्थग्रहण की शास्त्रीय परम्परा का उनके विभेदों सहित विवेचित किया गया है। डाक्टर साहब ने अपने इस अध्ययन को विपुल उद्धरणों से परिपुष्ट किया है। उनका कथन है कि सीता सौंदर्य निरूपण एवं पथिक राम के विविध रूपों के वर्णन में तुलसी की विलक्षण संदर्भण प्रतिभा का परिचय मिलता है। पंचम अध्याय में प्रबंध ग्रहण की शास्त्रीय कसौटी में मानस की कथा वस्तु का विवेचन किया गया है। इसमें प्रत्येक काण्ड के आधिकारिक एवं सांकेतिक प्रसङ्गों के स्रोतों का विश्लेषण करके एक स्थिर मत प्रदान किया गया है।

प्रत्येक कांड की प्रमुख प्रमुख घटनाओं का अन्य संस्कृत कवियों के काव्यों से तुलनात्मक अध्ययन करके निर्भीकता पूर्वक उनके ऋण को तुलसी द्वारा घोषित काव्य में उन्होंने इङ्गित किया है। इसमें भारतीय संस्कृति की चिर-प्रचलित कथानक एवं रूढ़ियों के चयन में तुलसी ने अपनी मधुकरी वृत्ति का परिचय दिया है। इसके साथ ही डॉ० कपूर ने यह स्वीकार किया है कि यदि सम्पूर्ण मानस किसी न किसी ग्रन्थ की छाया मात्र है तो तुलसी की मौलकिता इस बात पर निर्भर है कि तुलसी ने विभिन्न निगमागम तथा २५० संस्कृत ग्रन्थों में बिखरी हुई रामकथा की सामग्री को इस प्रकार से नियोजित किया कि वह ताज ऐसे महान आश्चर्य के समान ग्रंथ का निर्माण करने में समर्थ हुये। उनका गौरव इसी बात पर निर्भर है कि उन्होंने विभिन्न स्रोतों से वस्तु ग्रहण करके अपनी करियत्री प्रतिभा, निपुणता और अभ्यास के बल पर मानस ऐसे महाकाव्य का निर्माण किया जो हिन्दी का ही नहीं विश्व साहित्य की स्थायी प्रदर्शनी का अनमोल रत्न बनकर रह गया है। अंत में प्रकीर्णांक के रूप में अन्य उन समानान्तर प्रसंगों एवं उद्धरणों को काण्ड क्रमानुसार ही प्रस्तुत किया गया है जो मानस पर अपना स्थायी प्रभाव रखते हैं। इस सम्पूर्ण शोध के आधार से स्वीकार किया जा सकता है कि डॉ० कपूर ने अपनी विद्वता एवं गंभीर संस्कृत काव्यों के ज्ञान के माध्यम से तुलसी की संदर्भण कला का ऐसा शास्त्रीय एवं वैज्ञानिक गवेषण प्रस्तुत किया है जो अपने में अद्वितीय है।

बंगाली कवि कृतिवासी की रामचरित मानस से तुलनात्मक अध्ययन

(डा० रमानाथ त्रिपाठी, १६५७)

प्रस्तुत शोध प्रबंध डॉ० रमानाथ त्रिपाठी द्वारा सन् १६५७ में आगरा विश्व विद्यालय के तत्वावधान में पी.एच.डी. उपाधि के लिए प्रेषित किया गया था। इसका प्रकाशन हो चुका है। अपनी सम्पूर्ण गवेषणात्मक सामग्री को नौ अध्यायों में संजोया है। इस शोध के प्रकाशन में उन्होंने स्वीकार किया है कि सांस्कृतिक एकता को एक सूत्र में बांधे रहने में साहित्य एक महत्वपूर्ण साधन के रूप में माना जा सकता है। उनका कहना है कि तुलसी के मानस में भारतीय संस्कृति की अमिट छाप है तो बंगला की अन्यतम कृति कृतिवासी रामायण में बंगला प्रांत की संस्कृति का सुन्दर समन्वय मिलता है। प्रथम अध्याय में कई एतिहासिक ग्रंथों का आधार लेकर प्रागैतिहासिक काल से लेकर मुगल काल तक के बंगला समाज के घटना चक्रों का संक्षिप्त विवेचन कर कृतिवासी कालीन परिस्थितियों पर डॉ० त्रिपाठी ने विधिवत् विचार किया है। इस अध्ययन का मूल उद्देश्य बंगला कृति कृतिवासी रामायण के निर्माण काल की परिस्थितियों को सभी से परिचित कराना है। इसके अनन्तर तुलसी कालीन परिस्थितियों का भी विवेचन किया गया है। अंत में डॉ० साहब ने निष्कर्ष रूप में स्वीकार किया है कि दोनों कवियों ने संकटग्रस्त जनता को भक्त-वत्सल

भगवान के उदार चरित द्वारा आश्वस्त कराने की महान् चेष्टा की है। द्वितीय अध्याय में वैष्णव भक्ति की विचारधारा में राम-भक्ति का स्थान निरूपित करते हुये दोनों रामायणों के क्षेत्रों में उनके विकासक्रम का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। अंत में डॉ० साहब ने स्वीकार किया है कि दोनों महान कवियों ने अपने ग्रन्थों के माध्यम से अपने अपने क्षेत्र म रामभक्ति के प्रचार एवं प्रसार में बहुत योग दिया है। दोनों ने मुगलकालीन अत्याचारों से त्रस्त जनता को बचाने के लिए जन-जागरण पैदा किया है।

तृतीय अध्याय में रामायण पुनीत समाज एवं संस्कृति का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। दोनों कवियों ने सामाजिक चित्रण में वर्ण व्यवस्था की स्थिति, वर्ण संगठन, नारी का स्थान आदि विषयों पर एक से ही विचार प्रस्तुत किए हैं। डॉ० त्रिपाठी ने दोनों रामायणों में चित्रित रीतिरिवाज एवं संस्कारों तथा वस्त्राभूषणों और उत्सवादि मंगल विधान के समारोहों का उल्लेख किया है। चौथा अध्याय कृतिवासी रामायण की मौलिकता पर प्रकाश डालता है। उनका कथन है कि अधिकांश बंगाली विद्वान इसे अनुवाद मात्र ही मानते हैं परन्तु डॉ० साहब इसे केवल बाल्मीकि रामायण से ही प्रभावित रचना नहीं मानते वरन् विभिन्न संस्कृत ग्रन्थों से भी किंचित प्रभावित रचना मानते हैं। पंचम अध्याय में दोनों की कथा वस्तु का तुलनात्मक अध्ययन कर उनमें साम्य तथा वैषम्य स्थापित किया गया है। मूल से भिन्न दोनों कथा वस्तु की समानता एवं परस्पर न्यूनता का भी कारण उन्होंने निर्देशित किया है। इसी दृष्टिकोण को छठे अध्याय में रखकर दोनों के चरित्र चित्रण का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। दोनों के चरित्र

चित्रण वैभिन्य का मुख्य कारण डा० त्रिपाठी ने माना है कि तुलसी का चरित्र चित्रण आदर्शवाद से प्रभावित है और कृतिवासी में मानवीय सहृदयता का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है। सातवों अध्याय में भक्ति सम्बन्धी भावना का स्पष्टीकरण किया गया है। डॉ० त्रिपाठी के विचार से कृतिवासी एवं तुलसी की भक्ति में कुछ समानता होते हुए कतिपय भिन्नता भी है अर्थात् कृति वासी दार्शनिक विचारों से इतनी बोझिल नहीं है जितना कि मानस। आठवें अध्याय में कतिपय चुने हुए प्रसंगों को लेकर दोनों महा कवियों के काव्योत्कर्ष को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। और इस क्षेत्र में उनके विचार से तुलसी का काव्योत्कर्ष कृतिवासी से कहीं अधिक श्रेष्ठ एवं कलात्मक है। नवम अध्याय उपसंहार के रूप में दिया गया है। इसमें दोनों रामायणों के युगीन चित्रण एवं रचना के दृष्टिकोण में पर्याप्त साम्य है। दोनों में काव्य का अजस्र प्रवाह है परन्तु प्रादेशिक वैशिष्टय का पूर्ण परिपाक दोनों में एक सा मिलता है। इस अध्याय में ही कृतिवासी जी का संक्षिप्त जीवन चरित्र भी प्रस्तुत किया गया है। सम्पूर्ण ग्रंथ के अध्ययन से हमें यह स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं है कि डॉ० त्रिपाठी ने कृतिवासी एवं मानस का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करके दो प्रान्तों की जनता में एकता के सूत्र पिरो कर एक दूसरे से अधिक निकट लाने का प्रयत्न अवश्य ही किया है।

तुलसी की जीवनी एवं विचार धारा

(डा० राजाराम रस्तोगी, १९५७)

डॉ० राजाराम रस्तोगी ने प्रस्तुत शोध प्रबंध पटना विश्व-विद्यालय की पी० एच० डी० उपाधि के लिये सन् १९५७ में प्रेषित किया था। इसका प्रकाशन सन् १९६३ में अनु-संधान प्रकाशन से हो चुका है। इसमें दो खण्ड हैं (१) जीवनी खण्ड (२) विचार खण्ड। आमुख में उन्होंने विषय की समीचीनता पर प्रकाश डालते हुए यह स्वीकार किया है, "इस प्रयास की नवीनता इसमें है कि भारतीय जीवन की पृष्ठ भूमि के बीच मैंने तुलसीदास को परखा है और भारतीय जीवन और सभ्यता के मान को उनकी कृतियों द्वारा स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है।" प्रथम खण्ड के प्रथम अध्याय में जीवन वृत्ति के विवादस्पद प्रसंगों को उठाया गया है। एक समग्र जीवनी भी प्रस्तुत की गई है। इस अध्ययन की विशेषता यह है कि अब तक प्राप्त जीवनी सम्बन्धी आधारों को पुनर्विवेचित करके तुलसी की जन्म तिथि एवं जन्म स्थान सम्बंधी नई स्थापनाएँ प्रस्तुत की गई हैं। ग्रंथ के द्वितीय अध्याय में महाकवि के सामाजिक विचारों का कई शीर्षकों के अन्तर्गत विवेचन दिया गया है। इसमें समाज की साधारण इकाई से लेकर समूह तक, व्यष्टि से समष्टि तक तुलसी सम्बन्धी नई मान्यताओं को नए रूप में रखा गया है। इसके अन्तर्गत वर्णाश्रम धर्म, नारी विवेचना, तुलसी युगीन रीति-रिवाज, मान्यताएँ, प्रथाएँ, शकुन, अपशकुन विचार, वस्त्रा-

भूषण, क्रीड़ा वर्णन, अस्त्र शस्त्र आदि का उद्धरणों सहित उल्लेख किया गया है। इस प्रकार की खोज डॉ० रस्तोगी की अपनी एक अलग मान्यता रखने में समर्थ है। निश्चय रूप से यह स्वीकार किया जा सकता है कि हिन्दी साहित्य में यह प्रथम प्रयास है जिसमें कृतियों के द्वारा प्राचीन सामाजिक जीवन, सभ्यता एवं संस्कृति के विस्तृत सोपानों का अन्वेषण किया गया है। प्रस्तुत ग्रन्थ के तीसरे अध्याय में प्राचीन राज्य व्यवस्था एवं शासन प्रणालियों का खोज पूर्ण इतिहास प्रेषित किया गया है। इसके अंतर्गत राजतंत्र एवं गणतंत्र की श्रेष्ठता तथा धर्म और अभिषेक की प्रणाली आदि का स्पष्ट विवेचन किया गया है। इसके अंतर्गत भक्ति, भक्ति के साधन, इसके लक्षण आदि का भी निरूपण किया गया है। अंतिम अध्याय में तुलसी के आध्यात्मिक विचारों पर प्रकाश डाला गया है। तुलसी पर वेदों, शास्त्रों, उपनिषदों का प्रभाव दिखाकर अन्य विभिन्न दार्शनिक मतों की कसौटी पर उनके दार्शनिक सिद्धांतों को कसने का प्रयास किया गया है। अन्त में तुलसी के सर्व दर्शन समन्वय को ठीक प्रकार से विवेचित करके इस ग्रन्थ का समापन किया गया है। इस प्रकार इस शोध प्रबंध में तुलसी की जीवनी तथा उनके सभी प्रकार के विचारों को एक स्थान में देने का प्रयास अवश्य ही प्रशंसनीय है। डॉ० रस्तोगी ने तुलसी की जीवनी में सोरों पक्ष को मान्यता देकर अपना मत पुष्ट प्रमाणों के आधार पर प्रस्तुत किया है जो पूर्व के विचारों में तालमेल बिठाने में समर्थ है। इसलिये तुलसी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व को उभारकर सामने रखने में डॉ० साहब सफल हुये हैं।

बाल्मीकि रामायण एवं मानस का तुलनात्मक अध्ययन

(डा. विद्या मिश्र, १९५८)

प्रस्तुत शोध प्रबंध लखनऊ विश्वविद्यालय के तत्वावधान में डॉ० विद्या मिश्र द्वारा सन् १९५८ में प्रेषित किया गया था। इस ग्रंथ का प्रकाशन अभी हाल ही में हुआ है। प्रथम परिच्छेद में 'भारत में राम-भक्ति का विकास' का समीक्षात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इसमें भक्ति सम्बंधी प्रामाणिक ग्रंथों का सम्यक् अध्ययन प्रेषित कर भक्ति के विकासात्मक स्वरूप को सामने रखने का प्रयास किया गया है। इसी संदर्भ में राम-भक्ति काव्य का भी परिशीलन किया गया है। द्वितीय परिच्छेद में 'रामायण और मानस' के आधार ग्रन्थों का परीक्षण किया गया है। उनका कथन है कि रामकथा का आदि काव्य चूंकि रामायण है इसलिये निश्चय ही यह मानस का आधार ग्रन्थ है। इस प्रकरण में उन सभी ग्रन्थों का उल्लेख किया गया है जिनसे कवि प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से प्रभावित है। इस स्थल में तुलसी के मौलिक भावों को विशेष रूप से उल्लखित करने का प्रयास किया गया है। तृतीय परिच्छेद में रामायण और मानस में अभिव्यक्त राम के रूप का तात्विक विवेचन किया गया है। इसमें अन्वेषक ने तुलनात्मक पद्धति को ही अपनाया है जिसमें दोनों ग्रन्थों में प्रस्तुत चरित्र चित्रण के साथ के तत्वों के साथ साथ वैषम्य के तत्वों को भी खोज निकालने का प्रयास किया गया है। इसी प्रकरण में राम के स्वरूपों के विविध अंशों का सूक्ष्म पर्यवेक्षण किया गया है।

चतुर्थ परिच्छेद में रामायण एवं मानस की कथा वस्तु का समीक्षात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इन दोनों की कथा वस्तुओं में साम्य स्थापन के उपरांत भेद के कारणों को भी डा० मिश्र ने प्रस्तुत किया है। साथ ही मौलिक प्रसंगों के अन्य आधार ग्रंथों का उल्लेख भी किया गया है। पंचम परिच्छेद दोनों महाकाव्यों के पात्रों के व्यापक चरित्र-चित्रण पर गंभीर प्रकाश डालता है। उक्त विवेचना में महाकवि के मौलिक व्यक्तित्व तथा भावों की सर्वोत्तम अभिव्यक्ति को भी ध्यान में रखा गया है। छठे परिच्छेद में दोनों महाकाव्यों के व्यापक दृष्टिकोण की विभिन्न परिस्थितियों का सम्यक् उद्‌घाटन किया गया है। विभिन्न शास्त्रों में वर्णित सांस्कृतिक, राजनैतिक, सामाजिक परिस्थितियों के प्रभाव का आकलन तथा विस्तृत अध्ययन और सूक्ष्म परिवेक्षण किया गया है। इसमें तत्कालीन परिस्थितियों का भी विशेष रूपसे ध्यान रखा गया है। इसमें यह भी प्रयास डॉ० मिश्र द्वारा किया गया है कि कहाँ तक कवि ने अपने युग को मौलिक संदेश दिया है। अंतिम परिच्छेद में दोनों महाकाव्यों की साहित्यिक विवेचना काव्यकला के आधार पर की गई है। अंत में यह स्वीकार किया जा सकता है कि अद्यावधि तुलसी पर की गई आलोचनाओं के क्षेत्र में इसे हम मौलिक प्रयास कह सकते हैं जिसमें दोनों महा कवियों के विशिष्टतम गुणों पर व्यापक रूप से प्रकाश डाला गया है। उनका यह कहना महत्वपूर्ण है कि तुलसी ने बाल्मीकि रामायण द्वारा रामकथा के सेतु का तो आधार लिया किंतु उस सेतु के पथिकों के हेतु अपनी भक्ति माधुरी एवं काव्य सौष्ठव का स्वर्ण सुगन्ध संयोग कर सुपाथेय भी प्रदान किया है।
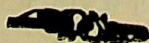
कम्ब रामायण एवं मानस का तुलनात्मक अध्ययन

(डा० सुशंकर राजू, १९५९)

प्रस्तुत शोध-प्रबंध मद्रास विश्वविद्यालय के तत्वावधान में डॉ० सुशंकर राजू द्वारा सन् १९५९ में पी०एच०डी० उपाधि हेतु प्रेषित किया गया था। यह अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ। यह तमिल विभाग में अंग्रेजी भाषा के माध्यम से तैयार किया गया था। इसमें कुल सात अध्याय हैं। इन अध्यायों के अतिरिक्त एक सुविस्तृत प्रस्तावना भी प्रारम्भ में जोड़ दी गई है। प्रथम अध्याय रामायण के विभिन्न स्वरूपों एवं आकारों के विश्लेषण से सम्बन्धित है। दूसरे अध्याय में दोनों महाकवियों के द्वारा प्रस्तुत रामायणों में विभिन्न भाषाओं के प्रयोग का तुलनात्मक अध्ययन देकर डॉ० राजू ने बड़ी विद्वत्ता के साथ भाषा के वैभिन्य का तुलनात्मक विवेचन किया है। तृतीय अध्याय दोनों महाकवियों की सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक तथा साहित्यिक परिस्थितियों का विधिवत् विवेचन करता है जिनने दोनों के साहित्य निर्माण में निर्णायक प्रभाव डाला है। चतुर्थ अध्याय इस शोध के बहुत ही तात्विक अंश को प्रस्तुत करने में समर्थ है। इसमें दोनों रामायणों में वर्णित मार्मिक प्रसंगों एवं आनन्द पूर्ण दृश्यों का क्रम विकासात्मक एवं तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। इस अध्याय में अध्यात्म रामायण एवं बाल्मीकि रामायण दोनों की पृष्ठ भूमि को ध्यान में रखकर ही सम्पूर्ण विवेचना प्रस्तुत की गई है। पञ्चम अध्याय में दोनों

रामायणों के प्रमुख एवं साधारण पात्रों का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। षष्ट अध्याय दोनों रामायणों के सामाजिक एवं साहित्यिक दृष्टिकोण को उद्घटित करने में सफल हुआ है। अंतिम अध्याय इस विद्वतापूर्ण विवेचना का उपसंहार प्रस्तुत करता है। इस प्रकार डॉ० राजू ने इस शोध प्रबंध के तुलनात्मक अध्ययन में तमिल के कवि कम्ब एवं तुलसी के महाकाव्य का अत्यन्त सूक्ष्म गवेषण प्रस्तुतकर एक महत्वपूर्ण कार्य किया है। ऐसे तुलनात्मक अध्ययन में दो विभिन्न भाषाओं की समृद्ध पृष्ठ भूमि देकर दोनों महाकवियों के महत्व को सभी भाषा-भाषियों के मध्य में रखा जाना एक भावात्मक एकता स्थापित करने का शुभ संकेत माना जा सकता है।

—:•:—

गोस्वामी तुलसीदास-व्यक्तित्व दर्शन एवं साहित्य

(डा. रामदत्त भारद्वाज, १६६०)

डॉ० रामदत्त भारद्वाज ने सन् १६६० में डी० लिट्० उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध प्रबंध आगरा विश्व विद्यालय के तत्वावधान में प्रेषित किया था। इस शोध का विषय 'रत्नावली की जीवनी और रचना एवं शूकरक्षेत्र के तादात्मय तथा इतिवृत्ति के विशिष्ट परिचय से समन्वित गोस्वामी तुलसीदास के जन्म स्थान आविर्भाव काल, परिवार, व्यक्तित्व आदि का आलोचनात्मक अध्ययन है परन्तु उसका प्रकाशन डॉ० साहब ने गोस्वामी तुलसीदास-व्यक्तित्व दर्शन एवं साहित्य के नाम से कराया। मूल शोध प्रबंध दो खण्डों में विभक्त है। प्रथम खण्ड में नौ अध्याय हैं तथा द्वितीय खण्ड में तीन अध्याय हैं। इस शोध प्रबंध में डॉ० साहब का उद्देश्य तुलसी की जीवनी, व्यक्तित्व, दर्शन एवं रत्नावली के कृतित्व सम्बन्धी गवेषणा प्रस्तुत करना है। इसमें उन्होंने विशेष रूप से तुलसी के सोरों पक्ष को प्रबलता पूर्वक संस्थापित किया है। इस सम्पूर्ण गवेषण में इन्होंने अन्य सभी तर्कों को निरस्त करके सोरों पक्ष को ही प्रामाणिक मान्यता प्रदान की है। प्रथम अध्याय के अन्वेषण के उपक्रम में पाश्चात्य एवं प्राच्य तुलसी समीक्षकों की गवेषणाओं की चर्चा की गई है जिसमें विशेष रूप से तुलसी की जीवनी पर पड़ने वाले प्रकाश की ही ओर भारद्वाज का मुख्य ध्यान रहा है। उनकी मान्यता है कि सन् १८७४ में प्रकाशित बुन्देलखण्ड

गजेटियर का सही मूल्यांकन नहीं हुआ जिसमें तुलसी को राजापुर का संस्थापक और सोरों के निवासी होने का उल्लेख मिलता है। इन समीक्षकों में ग्राउज, ग्रियर्सन, मिश्रबन्धु, श्यामसुन्दरदास, एवं आचार्य शुक्ल ही प्रमुख हैं।

द्वितीय अध्याय में भ्रांत साहित्य के अंतर्गत उन प्राचीन उल्लेखों की विवेचना की गई है जो तुलसी की जीवनी पर प्रकाश डालते हैं। इसके अंतर्गत तुलसी चरित, मूल गोसांई चरित, घट रामायण गोसाईं चरित, गौतम चन्द्रिका,"तुलसी प्रकाश का सविस्तार परीक्षण किया गया है। इन सभी ग्रंथों का बाह्य एवं आंतरिक परीक्षण प्रस्तुत करके सबको भ्रांत साहित्यके रूपमें उन्होंने स्वीकार किया है कि ये सब ग्रन्थ असत्य सामग्री को ही प्रस्तुत करते हैं। डॉ० साहब अपने पुष्ट तर्कों के आधार पर तुलसी चरित, मूल गोसाईं चरित और गोसाईं चरित को संदिग्ध ग्रंथ ठहराते हैं तथा घट रामायण और गौतम चन्द्रिका को ऐतिहासिक दृष्टि से व्यतिक्रमों से भरपूर ग्रन्थ। इनके विचार से यद्यपि तुलसी प्रकाश सोरों पक्ष का समर्थन करता है परन्तु वैज्ञानिक परीक्षण में यह खरा नहीं उतरता था इसमें भी उन्हें बहुत से व्यर्थ एवं प्रक्षेपपूर्ण प्रसंग मिले हैं। अध्याय तृतीय शूकर क्षेत्र के माहात्म्य और उसके स्थान निर्धारण पर विचार करता है। मानस के आत्मसाक्ष्य के आधार पर सूकर खेत में उन्हें बालकाल में रामायण सुनने का उल्लेख मिलता है। उनका कहना है कि इस नाम के दो क्षेत्र हैं एक गंगा के घागरा, के संगम में दूसरा एटा जिले में। प्रथम सूकरक्षेत्र की ओर आचार्य शुक्ल ने पूर्व ही निर्देश किया था परन्तु कतिपय विद्वानों के अनुसार गंगा के उपकण्ठ में स्थित एटा जिला में ही वह सूकर खेत है

जिसका सम्बन्ध तुलसी से माना जाता है। डॉ० भारद्वाज ने दोनों स्थान का प्रामाणिक एवं सापेक्षिक वर्णन कर दूसरे की ही मान्यता स्वीकार की है। इस स्थान के महात्म्य की उपयुक्तता को प्रमाणित करने के लिये डॉ० साहब ने संस्कृत ग्रंथों से कई उद्धरण दिए हैं। चतुर्थ अध्याय में गोस्वामी जी के जन्म स्थान के विवाद को उठाया गया है। इस विषय में राजापुर काशी, अयोध्या, तारी, रामपुर की सम्पूर्ण सामग्रियों का विधिवत् परीक्षण करके कतिपय निष्कर्ष प्रस्तुत किये गये हैं। डॉ० भारद्वाज की स्पष्टोक्ति है कि आचार्य चन्द्रबली पाण्डेय द्वारा दिये गये तुलसी के एक साक्ष्य के आधार पर ही वे अब तुलसी का जन्म रामपुर मानने लगे हैं। इस विवेचना में कहीं कहीं उनका आग्रह निष्पक्ष नहीं दिखाई देता। अंत में उन्होंने पूर्ण परीक्षण करने के उपरांत ही सूकर क्षेत्रांतर्गत गंगोपकन्ठस्थ रामपुर को ही महाकवि का जन्म स्थान माना है।

पंचम अध्याय में गोस्वामी जी के आविर्भाव एवं तिरोभाव से सम्बन्धित तिथियों का अत्यन्त संक्षेप रूप में निर्धारण किया गया है। 'तुलसी प्रकाश' में दी हुई जन्म-तिथि (सं० १५६८) अगस्त १५११ को ही वे युक्तिसंगत स्वीकार करते हैं। यद्यपि यह तिथि अधिक तुलसी अध्येताओं द्वारा मान्य नहीं है किंतु ज्योतिष एवं तुलसी के जीवन सम्बन्धी अन्य उल्लेखों में ही यह तिथि सर्व तर्क सम्मत सिद्ध होती है। तिरोभाव के संबंध में १६८० वि० वाली तिथि को ही वे अधिक प्रमाणित मानते हैं परन्तु उन्हें श्रावण शुक्ला सप्तमी की ही तिथि अधिक उपयुक्त प्रतीत हुई है। षष्ट अध्याय में गोस्वामी जी की आकृति, चित्र, प्रतिमा एवं स्वभाव प्रकृति का विधिवत् विवेचन प्रस्तुत किया गया है। इसमें उन्हें वाराणसी के कला भवन से प्राप्त

प्रहलाद घाट वाला चित्र ही परीक्षण में अधिक मान्य सिद्ध हुआ है। इन सम्बन्ध में उन्हीं अंतः साक्ष्यों की मान्यता प्रबलता पूर्वक स्वीकार की गई है जो सोरों सामग्री को पुष्ट करते हैं। सप्तम अध्याय में सोरों सामग्री का अत्यन्त सूक्ष्म पर्यवेक्षण प्रस्तुत किया गया है। इसमें उन सभी पुस्तकों एवं हस्तलेखों का सचित्र विवरण प्रेषित किया गया है जो सोरों सामग्री को प्रबलतापूर्वक प्रस्तुत करते हैं। डा० साहब ने यह अवश्य स्वीकार किया है कि इस सामग्री को प्रस्तुत करने में बहुत से आलोचकों के घात-प्रतिघात सहने पड़े हैं परन्तु यह सामग्री अग्नि परीक्षाओं में अधिक से अधिक खरी उतर ही गई है। इस सामग्री को अन्वेषक ने अधिक निकटता से परीक्षण किया था और अंत में डॉ० साहब ने इस कल्पना पर भी विचार किया है कि यदि सोरों सामग्री न होती तो तुलसी की जीवनी का क्या रूप होता। उनका यह दृढ़ मत है कि तुलसी ऐसे महाकवि की जीवनी में कोई सामग्री यदि प्रामाणिक रूप से प्रकाश डालती है तो वह सोरों सामग्री ही है। इस अध्याय के अंतर्गत उन्होंने रामपुर सम्बन्धी सामग्री को ही अधिक प्रामाणिकता प्रदान की है। इस सम्पूर्ण गवेषण को उन्होंने चार भागों में गवेषित किया है। (१) सिंहावलोकन (२) सोरों सामग्री की विवेचना (३) सोरों सामग्री का आलोचन-प्रत्यालोचन (४) सोरों सामग्री के अभाव में तुलसी की जीवनी सम्बन्धी परिकल्पना। अंत में अपनी सम्पूर्ण विवेचना के आधार पर उन्होंने ३० तथ्य देकर अपनी ही मान्यता को पुष्ट किया है।

अष्टम अध्याय गोस्वामी जी की पत्नी रत्नावली का आत्म चरित, काव्य शैली, उपदेश, दर्शन आदि विभिन्न विषयों पर

विशेष विवेचन प्रस्तुत करता है। रत्ना दोहावली के आधार पर ही उन्होंने उनके काव्य की समीक्षा प्रस्तुत की है। यह अध्ययन प्रसंगानुसार तुलसी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व को स्पष्टता प्रदान करने के लिए ही डॉ० भारद्वाज ने किया है। नवम् अध्याय में अंतः साक्ष्य के आधार पर गोस्वामी जी की जीवनी प्रेषित की गई है जो कि उनके काव्यों द्वारा हमारे सामने आती है। इस प्रकार से यह सम्पूर्ण प्रथम खण्ड तुलसी की जीवनी पर ही व्यापक रूप से गवेषणा प्रस्तुत करता है और अंत में सोरों पक्ष को प्रौढ़ता पूर्वक सुस्पष्ट कर रामपुर को ही तुलसी का जन्म स्थान स्वीकृत करता है। इस शोध ग्रन्थ के पूर्व सोरों पक्ष को इतनी प्रबलता के साथ लाने एवं उसे प्रामाणिकता के साथ प्रस्तुत करने का कार्य नहीं किया गया था।

दूसरे खण्ड के दसवें अध्याय में गोस्वामी जी के 'मानस' के पाठों का अन्वेषण किया गया है। इसमें विशेष प्रकार से मानस के पाठान्तर एवं प्रक्षेपों का विवेचन है इसमें तुलसी की प्रामाणिक कृतियों तथा उनके कथा वस्तु साहित्यिक संश्लेषण सम्बन्धी परीक्षण को ही अधिक महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। एकादश अध्याय में तुलसी की साहित्यिकता पर प्रकाश डाला गया है। इसमें विशेष रूप से मानस रूपक, मानस की भाषा, शैली, अंलकारादि विषयों पर विवेचना प्रेषित की गई है। बारहवें अध्याय में तुलसी की विचारधारा को चार भागों में विभक्त कर अध्ययन किया गया है। (१) दार्शनिक (२) मनोवैज्ञानिक (३) आचार-पत्रक (४) राजनैतिक। प्रकाशित ग्रन्थ के क्रमशः द्वादश, त्रयोदश, चतुर्दश अध्यायों में बांटकर रखा है। इस प्रकार से डॉ० भारद्वाज ने तुलसी की जीवनी में सोरों के पक्ष को प्रबलतापूर्वक रखकर शेष तुलसी के अन्य प्रश्नों को स्पर्श करते हुये इस ग्रन्थ को समाप्त किया है।

तुलसी दर्शन मीमांसा

(डा० उदयभानुसिंह, १९६०)

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध डॉ० उदयभानुसिंह द्वारा सन् १९६० में लखनऊ विश्वविद्यालय के तत्वावधान में डी० लिट्० उपाधि हेतु प्रेषित किया गया था। यह उसी वर्ष प्रकाशित भी हो गया है। डॉ० साहब ने इस ग्रंथ के प्राक्कथन में विषय की उपादेयता के सम्बन्ध में प्रकाश डालते हुये यह स्वीकार किया है कि तुलसी के दार्शनिक विचारों को समझने समझाने का प्रयास इसमें विशिष्ट रूप से किया गया है। इस शोध प्रबंध में कुल ९ अध्याय हैं। प्रथम अध्याय में कवि के दार्शनिक विचारों के प्रेरक तत्वों पर प्रकाश डाला गया है। इसमें उपक्रम के रूप में भारतीय दर्शन का विधिवत् विवेचन किया गया है। उन्होंने दर्शन शब्द का वास्तविक अर्थ देते हुये उसका 'फिलासफी' शब्द से साम्य स्थापित किया गया है। डा० साहब का यह कथन सत्य है कि भारतीय धर्म दर्शन तथा सभ्यता पूर्णतः निगमागम मूलक है जिसको एक दूसरे से विच्छिन्न नहीं किया जा सकता। उन्होंने तुलसी को दार्शनिक कवि के रूप में स्वीकार किया है तथा वे महान जीव दृष्टा भी थे ऐसा उन्हें मान्य था। उनके विचार से तुलसी एक ऐसे तत्व ज्ञानी पुरुष थे जिन्होंने अपने विचारों को दर्शनशास्त्र की निर्भ्रान्त एवं व्यापक दृष्टिकोण में स्थिर किया है।

द्वितीय अध्याय में ब्रह्म राम के विभिन्न पक्षों को लेकर तुलसी द्वारा प्रस्तुत दार्शनिक सिद्धांतों की विवेचना की गई है।

इस संदर्भ में राम के स्वरूप, उनके लक्षण, निर्गुण एवं सगुण विवेचन, उनके विरोधी रूप, उनका विराट रूप, अवतार निरूपण, उसका प्रयोजन तथा राम और माया से सम्बन्ध आदि विभिन्न शीर्षकों में तुलसी के दार्शनिक सिद्धान्तों की विवेचना की गई है। तृतीय अध्याय में चेतन जीव सम्बन्धी गवेषणा की गई है। इसके अंतर्गत चेतन जीव के लक्षण, जीव और ब्रह्म का भेदापभेद, कारण शरीर तथा सूक्ष्म शरीर के कार्य, बुद्धि, अहंकार, चित्त, मानस रोग, संत-असंत के लक्षण आदि विभिन्न शीर्षकों में पूर्ण विवेचना की गई है। चतुर्थ अध्याय में जड़-जगत सम्बन्धी दार्शनिक विचारों पर प्रकाश डाला गया है। इस प्रकरण में जड़-जगत के सृष्टि क्रम में काल, स्वभाव, कर्मगुण, प्रकृति, त्रिविध सृष्टि आदि पर विधिवत परीक्षण किया गया है। डॉ० सिंह ने तुलसी के इस मत को ठीक माना है जिसमें उन्होंने जगत को सत्य माना है। उनके विचार से यह इस अर्थ में सत्य है कि सृष्टि का प्रवाह अनादि और अनन्त है। डा० साहब तुलसी को किसी विशिष्ट वाद-विवाद का प्रचारक नहीं मानते हैं। वे उन्हें समन्वयवादी ही मानते हैं। वे तो जगत को न तो सत्य मानते हैं न असत्य और न सत्यासत्य। इन तीनों विवादों को छोड़कर राम भक्ति का मार्ग अपनाना ही वे श्रेयष्कर समझते हैं।

अध्याय पंचम में मोक्ष के साधनों पर सर्वाङ्ग विवेचन किया गया है। सूक्ष्म रूप में वैज्ञानिक परीक्षण करने के बाद डॉ० सिंह ने दो ही साधन तत्त्वतः मोक्ष के स्वीकार किये हैं। (१) ज्ञान (२) भक्ति। डॉ० साहब ने भक्ति एवं ज्ञान की तात्विक विवेचना में १३ कारण प्रस्तुत करके भक्ति को ज्ञान से सर्वोपरि सिद्ध किया है। अध्याय षष्ट में धर्म विधि के अंतर्गत धर्म के

मूल वर्णाश्रम धर्म, राजधर्म, स्त्रीधर्म आदि का विवेचन प्रस्तुत कर धर्म के साधनों पर व्यापक विवेचन प्रस्तुत किया गया है। ज्ञान को उन्होंने वृहद् दो रूपों में बांटा है। (१) प्रभाव कारक ज्ञान (२) अनुभव कारक ज्ञान। प्रथम के अंतर्गत प्रत्यक्ष प्रमाण और शब्द को लिया गया है। ज्ञान और भक्ति को उन्होंने मोक्ष का साधन माना है। उनका भक्ति मार्ग ज्ञान संयुक्त तथा ज्ञान भक्ति संयुक्त। अध्याय अष्टम में भक्ति का सांग निरूपण किया गया है। डॉ० साहब के विचार से तुलसी की भक्ति श्रुति-सम्मत एवं विरत विवेक युक्त है। इसके उपरांत उन्होंने भक्ति में कृपा की अनिवार्यता को स्वीकार कर उसे तीन भागों में विभक्त किया है। (१) कृपा साधन (२) रामानुराग साधन (३) विहित-साधन। इस विबेचना के उपरांत नवधा भक्ति के अन्य आर्ष ग्रन्थों से तुलनात्मक अध्ययन कर उसके साम्य एवं वैषम्य पर अलग से प्रकाश डाला गया है। अंतिम अध्याय उपसंहार प्रस्तुत करता है जिसमें निगम, उपनिषद, आगम, विभिन्न दार्शनिक वादों से तुलसी के मतों का साम्य एवं वैषम्य स्थापित किया गया है। इसी अध्याय के अंत में भक्ति शास्त्र का व्यापक शास्त्रीय अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। उन्होंने निष्कर्ष रूप में स्वीकार किया है कि तुलसी का मानस पौराणिक शैली पर लिखा हुआ शास्त्र महाकाव्य है। उनका दृष्टिकोण मानवतावादी है। उनके विचार से तुलसी की समस्त रचनाएँ धार्मिकता समन्वय भावना, अवतारवादिता एवं भक्ति-निष्ठा से आद्योपांत अनुप्राणित हैं। इस पर्यवेक्षण से यह सिद्ध होता है कि तुलसी का राम भक्ति दर्शन साम्प्रदायिक नहीं है। उनकी पौराणिकता अवश्य है परन्तु उनका दर्शन समन्वयवादी ही रहा है। अंत में डॉ० सिंह ने चार अनुबन्ध भी संलग्न किए हैं जिसमें अंत का अनुक्रमणिका का है। प्रथम तीन में पहला ही अधिक महत्वपूर्ण

है। इसमें तुलसी के काव्य दर्शन और भक्ति रस दोनों का आद्यान्त विस्तार के साथ वर्णन किया गया है। काव्य दर्शन खण्ड में तुलसी के उन अंशों को संकलित किया गया है जो उनके दार्शनिक विचारों से संयत हैं। इसके अतिरिक्त डॉ० साहब ने तुलसी के विचारों का संकलन चयनिका खण्ड में किया जिसमें उन उद्धरणों को संकलित किया गया है जो काव्य लक्षण, काव्य शरीर, काव्य हेतु, प्रतिपाद्य विषय, काव्य-भाषा कवि एवं श्रावक पर प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से प्रकाश डालते हैं। उनका यह खण्ड निश्चय ही तुलसी के दार्शनिक एवं धार्मिक विचारों को एक स्थान पर संकलित करने का प्रशंसनीय प्रयत्न करता है। यद्यपि यह चयनिका इतनी विस्तृत एवं व्यापक नहीं है जो तुलसी के सभी ग्रंथों में स्फुट बिखरे हुये विचारों को अपने में समेट सके फिर भी विनय पत्रिका, वैराग्यसंदीपनी, दोहा-वली, कवितावली, तथा मानस में व्यक्त दार्शनिक सिद्धांतों को इसमें रखने का प्रयत्न किया गया है। इसके पूर्व के अनुबंध में डॉ० साहब की स्वीकारोक्ति महत्वपूर्ण है कि हिन्दी के किसी कवि ने भक्ति-रस को रस की उच्चता तक पहुंचाने का प्रयास किया है तो उसका श्रेय तुलसी को ही मिलना चाहिये। इस प्रकार यह सम्पूर्ण शोध ग्रंथ तुलसी के दार्शनिक विचारों को समझने समझाने के महत्व पूर्ण पक्ष को पूरा करता है।

तुलसी पर पौराणिक प्रभाव

(डा. विजयबहादुर अवस्थी, १९६०)

यह शोध प्रबन्ध दिल्ली विश्व-विद्यालय के तत्वावधान में डॉ० विजयबहादुर अवस्थी द्वारा सन् १९६० में पी-एच०डी० उपाधि हेतु प्रस्तुत किया गया था। इस ग्रन्थ में डॉ० अवस्थी ने प्राक्कथन में इस विषय की आवश्यकता का प्रतिपादन किया है। सर्व प्रथम उनके पूर्व के १६ उपाधि-कारक शोध ग्रन्थों की अत्यन्त संक्षिप्त व्याख्या की गई है। उन्होंने यह स्वीकार किया है कि यद्यपि प्रतिपाद्य विषय एवं प्रतिपादन शैली पर पुराणों का बहुत प्रभाव है फिर भी वह पुराण नहीं है। इसीलिये डा० साहब ने इसी अभाव की पूर्ति के लिये इस शोध विषय को चुना है। इसमें कुल ६ अध्याय हैं। प्रथम अध्याय में पुराणों के विस्तृत वाङ्मय के संदर्भ में उनका रचनाकाल, प्रतिपाद्य विषय प्रतिपादन शैली की विशेषताओं का विस्तार के साथ उल्लेख किया गया है। द्वितीय अध्यायमें मानसकी कथा वस्तु पर पौराणिक प्रभाव का विवेचन विस्तार पूर्वक किया है। मानसाकार ने पुराणों से कथानक के अंश जहाँ जहाँ से उद्धृत किये हैं उनका उल्लेख करते हुए कवि के वस्तु ग्रहण एवं उसमें आवश्यक परिवर्तन करने के दृष्टिकोण को प्रस्तुत किया है। यह प्रयास शोध कर्ता का मौलिक प्रतीत होता है। तृतीय अध्यायमें मानसके तत्वचिंतन का पुराणों के संदर्भमें विचार किया गया है जिसमें दार्शनिक शब्दावली उनके ब्रह्म जीव एवं जगत संबंधी विविध वाद-विवादों का उल्लेख करते हुये उनका मानस पर

प्रभाव दिखाया गया है। मानस में पौराणिक मान्यता के विषय पर भी डॉ० अवस्थी ने विचार किया है। इस अध्याय में डॉ० साहब ने अपनी शोध सामग्री को अधिकांश रूप में डॉ० उदयभानु सिंह के शोध ग्रन्थ से लेकर उसकी व्याख्या दी है। चौथे अध्याय में मानस प्रतिपादित मोक्ष साधन पर पौराणिक प्रभाव दिखाया गया है। इस प्रसंग में मोक्ष तथा मोक्षके साधन, वर्णाश्रम धर्म की प्रतिष्ठा, स्त्री-धर्म, ज्ञान और भक्ति मार्ग आदि की सोदाहरण विवेचना की गई है। पंचम अध्याय में डॉ० अवस्थी ने मौलिक विवेचना प्रस्तुत करते हुये मानसकार द्वारा पुराणों से लिये गये शब्दों एवं अर्थों के ग्रहण सम्बन्धी विश्लेषण किये है। पुराण की संदर्भित पंक्तियां तुलसी के मानस के तुलनात्मक अध्ययन के लिए उद्धृत करने में अधिक स्थान की आवश्यकता की पूर्ति परिशिष्ट करके की गई है। डॉ० अवस्थी ने अर्थग्रहण एवं शब्दग्रहण शेष विस्तृत तालिकायें परिशिष्ट में प्रस्तुत की है। अन्तिम अध्याय मानस पर पुराणों की शैली का अन्वेषण प्रस्तुत करता है। इसके अन्तर्गत संवाद शैली, वर्णन शैली, भाषा शैली, प्रबन्ध शैली, चरित्रांकन शैली, आदि शीर्षकों के अन्तर्गत तुलसी के ऊपर पौराणिक शैली का प्रभाव देखा गया है। अंत में डॉ० साहब ने उपसंहार प्रकरण में यह स्वीकार किया है कि यद्यपि मानस पौराणिक विशेषताओं से मण्डित है पर यह पुराण पौराणिक शैली पर लिखा गया महाकाव्य है। अंत में मानस पर पुराणों की व्यापक प्रभाव की सम्यक प्रतीति के लिये सात परिशिष्ठों अन्य सामग्री का आकलन प्रस्तुत किया गया है। प्रथममें रामचरित की अन्तः कथाओं एवं उनके पौराणिक श्रोत का, द्वितीय में मानसकार द्वारा पुराणों के शब्दग्रहण का, तृतीय में मानस कार द्वारा पुराणों से अर्थग्रहण का, चतुर्थ में पुराणों के वक्ता श्रोता का,

पंचम में पुराण एवं मानस के मंगलाचरण के श्लोकों का, छठवें में पुराणों एवं मानस की स्तुतियों का तथा अंत में पुराणों एवं मानस की गीताओं का अत्यन्त संक्षिप्त परन्तु महत्वपूर्ण गवेषण प्रस्तुत किया गया है। इस सम्पूर्ण शोध ग्रन्थ के ५६४ पृष्ठों में मुख्य प्रतिपाद्य शोध सामग्री ३५४ पृष्ठों में ही केन्द्रित है शेष सामग्री परिशिष्टियों के रूप में दी गई है। निश्चय ही यह शोध पुराणों के मानस पर प्रभाव को मूल्यांकित करने में बहुत ही महत्वपूर्ण सामग्री प्रदान करने में समर्थ है।

रामचरित मानस का काव्य शास्त्रीय अनुशीलन

(डा. राजकुमार पाण्डेय, १९६०)

प्रस्तुत शोध प्रबंध को डॉ० राजकुमार पाण्डेय ने आगरा विश्वविद्यालय के तत्वावधान में पी-एच०डी० उपाधि हेतु प्रेषित किया तथा किंचित परिवर्तन के साथ इस ग्रन्थ का प्रकाशन अनुसंधान प्रकाशन कानपुर से हो गया था। इसमें कुल १२ अध्याय हैं। इस शोध प्रबन्ध की उपादेयता एवं आवश्यकता को दिग्दर्शित करते हुये स्वयं डॉ० पाण्डेय ने स्वीकार किया है कि मानस का प्रणयन गोस्वामी जी ने इति-वृत्ति कथन की प्रेरणा से नहीं प्रत्युत राम के उदात्त चरित को काव्य एवं कला की भूमिका पर प्रतिष्ठित कर उसे सहज में ही जनमानस में अवतीर्ण करा देने की अदम्य एवं बलवती आकांक्षा से ही किया है। कहना न होगा कि मानस सम्बन्धी प्रस्तुत हमारा शोधकार्य हमारे इसी केन्द्रीय विश्वास का मूर्त रूप है और इस विश्वास को क्रमवद्धता शास्त्रीय संबल देकर उसे द्वादश परिच्छेदों के एक वृहद् शोध प्रबन्ध के रूप में परिपुष्ट कराने का कार्य पूरा किया गया। प्रथम परिच्छेदके अंतर्गत प्रबंधकी सीमाओंके विवेचन की मुख्य दिशा का निर्देश करते हुए तुलसी का साहित्यिक मूल्यांकन किया गया है। इसका डॉ० पाण्डे ने भक्ति युग से लेकर उनके युग तक गोस्वामी जी के कवि व्यक्तित्व पर विचार किया है। उन्होंने कतिपय उन निरंकुश निष्कर्षों एवं भ्रांतियोंकी ओर भी आंगुलि निर्देश किया है। इस गवेषणाके अंतमें उन्होंने

स्वीकार किया है, "मानस के महा काव्यत्व की चिरन्तनता एवं कवि की प्रभूत प्राणवत्ता से परिचित होने के लिये हमने अपने अध्ययन में उनके सुगठित कथानक, महान उद्देश्य, एवं महत चरित व्यापक अलंकृत शैली एवं गम्भीर रस व्यंजनादि के चिरन्तन तत्वों को लेकर की है। हमें आशा है इस प्रकार गोस्वामी तुलसीदास के महान व्यक्तित्व की शास्त्रीय व्यंजना के हेतु प्रस्तुत प्रबन्ध के द्वादस परिच्छेदों में निबद्ध होने वाला हमारा यह महा प्रयास तुलसी साहित्य के मर्मज्ञों के निकट भी हमें निराश न होने देगा।"

दूसरे परिच्छेद में अब तक के तुलसी सम्बन्धी अध्ययन का विधिवत् परीक्षण किया गया है। इसमें पाश्चात्य विद्वान विल्सन से अब तक के देशी-विदेशी विद्वानों द्वारा प्रस्तुत सामग्री की समीक्षा की गई है। इसमें इन तुलसी अध्येताओं के द्वारा प्रस्तुत समीक्षाओं की विशेषताओं एवं न्यूनताओं को भी अलग से लक्षित किया गया है। डॉ० पाण्डेय ने इस के अतिरिक्त तुलसी युग से चली आती हुई टीकाकारों एवं प्रवचनकारो की परम्परा का भी विहंगम अवलोकन किया गया है। इन उपेक्षित टीकाकारो को डॉ० साहब ने तुलसी के महान प्रचारकों के रूप में स्वीकार किया है। चतुर्थ एवं पंचम परिच्छेद में तुलसी द्वारा प्रस्तुत काव्याभिमत तथा उनके द्वारा प्रस्तुत जीवन दृष्टि एवं काव्य रचना पर प्रकाश डाला गया है तुलसी के कवि व्यक्तित्व को हृदयंगम कराने के लिये तथा उसको पूर्ण संतुलित रूप में आंकने के लिए यह गवेषणा अधिक महत्वपूर्ण सामग्री प्रस्तुत करती है। तृतीय परिच्छेद में जहाँ अन्वेषण तुलसी के काव्य शास्त्र सम्बन्धी ज्ञान का परीक्षण प्रस्तुत किया गया है वहां चतुर्थ परिच्छेद तुलसी को

आदश परिकल्पनाओं पर, यहाँ तक कि उनकी समग्र काव्य सृष्टि पर उनकी जीवन दृष्टिके प्रभाव का परिचय मिलता है। इन दोनों अध्यायों में डॉ० पाण्डेय ने तुलसी के काव्य शास्त्रीय ज्ञान का परीक्षण किया है। पंचम परिच्छेद में कवि की संदर्भण कला के आधार पर पूर्ववर्ती संस्कृत काव्य के प्रभाव को दिखाकर कवि की मौलिकता का मूल्यांकन किया गया है। डॉ० साहब का अभिमत है कि तुलसी ने अपने कथानक को पूर्ववर्ती आर्ष ग्रन्थों के आधार पर सँवारा है परन्तु अपने आदर्शों के अनुभूत चरित्रांकन करने में मौलिकता को कायम रखा है। छठवें परिच्छेद में मानस की कथा संवेदना के मौलिक स्वरूप की चर्चा करते हुए सम्पूर्ण नाट्यांगों से पुष्ट सुश्रृंखलित कथानक की सोपान वृद्ध विवेचना की गई है। इसी प्रकरण में इतिवृत्तात्मक शुष्कता से बचने के लिए कवि के रसात्मक प्रकरणों की संयोजना पर भी विचार प्रगट किया गया है।

इस शोध प्रबन्ध के सप्तम परिच्छेद में मानस के चरित्र विन्यास पर मनोवैज्ञानिक दृष्टि से प्रकाश डाला है। डॉ० पाण्डेय ने तारा एवं मन्दोदरी ऐसे छोटे पात्रों से लेकर महत् चरित्रों पर सम्यक प्रकाश डाला है। इसमें उन्होंने समुदाय एवं वर्गगत पात्रों पर उतना ध्यान नहीं दिया जितना अलग अलग महत्ता वाले पात्रों पर। अष्टम परिच्छेद में गोस्वामी जी के प्रकृति चित्रण सम्बन्धी विवेचना पर प्रकाश डाला है। डॉ० पाण्डेय का यह निर्णय सत्य है कि जहाँ तुलसी ने परम्परा को छोड़कर प्रकृति का चित्रण किया है वहाँ वह अच्छा बन पड़ा है और जहाँ उन्होंने परम्परा का पालन किया है वहाँ वहाँ वे स्वाभाविक

चित्रण प्रस्तुत नहीं कर सके। नवम् परिच्छेद में तुलसी के भावपक्ष को सूक्ष्मता से उद्घाटित करने का प्रयास किया गया है। इसमें कवि द्वारा प्रस्तुत मार्मिक प्रसंगों के रसात्मक वैचित्र्य को प्रेषित कर उसकी स्पष्ट व्याख्या की गई है। इसमें उन्हें कवि के रसात्मक उदात्तीकरण के दर्शन प्राप्त हुए हैं। इस प्रकरण में भी कवि के मौलिक एवं अनूठें प्रसंगों की खोज डॉ० पाण्डेय ने की है। दशम परिच्छेद महाकवि की संदर्भण कला पर नवीन दृष्टि से प्रकाश डालता है। डा० लीहट के मतानुसार डॉ० पाण्डेय ने स्वीकार किया है कि जब एक महान लेखक कहीं से कुछ लेता है तो उसे अधिक संशोधित एवं परिवर्द्धित बना देता है। इस दृष्टिकोण से तुलसी की आर्ष ग्रंथों से ली हुई सामग्री को बहुत ही श्रेष्ठ रूप में प्रमाणित किया है।

प्रस्तुत प्रबन्ध का एकादश परिच्छेद मानस के कला पक्ष की विस्तृत विवेचना करता है। इस प्रकरण में प्रबन्ध की विषय गत मर्यादा अनुकूल उनका मानदण्ड व्याकरणिक एवं भाषा वैज्ञानिक का साहित्यिक अधिक रहा है। इसमें कवि की भाषा के व्यापक अध्ययन की शृंखला में मानस की शब्दशक्ति, रीति, वृत्ति, अलंकरण एवं छन्द योजना की संक्षिप्त विवेचना की गई है। इस अध्याय के अंतिम चरण में अपने विवेच्य ग्रन्थ की संवाद योजना पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। अंतिम परिच्छेद में प्रमुख भारतीय महाकाव्यों की विचार परम्परा के साथ मानस के काव्य रूप तथा उसके महा काव्यत्व को परखा गया है। इस संदर्भ में डॉ० पाण्डेय ने प्रगतिशील तुलसी अध्येताओं एवं आलोचकों के बिचार भी प्रस्तुत किये हैं। अपने विद्वत्तापूर्ण निष्कर्ष में अन्वेषक ने मानस को द्वितीय उत्थान की लोक परम्परा में सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ के रूप में स्वीकार किया है

जिसमें महाकाव्यों के सर्वोत्कृष्ट गुणों का समाहार हमें देखने को मिलता है। इसे वे गोस्वामी जी की मौलिक देन स्वीकार करते हैं जिसमें महाकवि ने भारतीय समाज व्यवस्था को तथा काव्य, जीवन एवं दर्शन को निकट से सम्बद्ध कर दिया है। सम्पूर्ण रूप में यह शोध प्रबन्ध मानस की काव्य शास्त्रीय विवेचना की परम्परा में सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ स्वीकार किया जा सकता है।

बाल्मीकि रामायण और मानस का साहित्यिक दृष्टि से तुलनात्मक अ यथन

(डा० आर. पी. अग्रवाल, १९६०)

यह शोध प्रबंध डॉ० आर० पी० अग्रवाल द्वारा आगरा विश्वविद्यालय की पी-एच. डी. उपाधि हेतु सन् १९६० में प्रेषित किया गया था। यह ग्रंथ अभी तक अप्रकाशित है। इस ग्रन्थ के प्राक्कथन में डॉ० साहब ने स्वीकार किया है कि बाल्मीकि रामायण का अध्ययन बहुत ही कम किया गया है। उन्होंने प्रस्तुत शोध में दो महाकवियों की दो श्रेष्ठतम कृतियों का साहित्यिक दृष्टि से तुलनात्मक अध्ययन किया है। इस ग्रंथ में सात अध्याय हैं। प्रथम अध्याय विषय प्रवेश के रूप में पूर्ववर्ती सामग्री का सुविस्तृत विवेचन प्रस्तुत करता है। डॉ० साहब का यह मत अलीक नहीं है कि बाल्मीकि रामायण और मानस के रचयिता उन महान कवियों में से एक हैं जिनका भारतीय साहित्य और समाज पर अत्यन्त गहरा प्रभाव पड़ा है और यह प्रभाव सार्वदेशिक और सार्वकालिक है। उनके विचार से राम-कथा भारत की सभ्यता एवं संस्कृति की ऐसी महान निधि है जोकि युगों से यहाँ के जन-मन को आलोकित करती रही है। उनका मत हैकि दो सहस्त्र वर्षोंके व्यवधानने उसी राम कथाको ऐसा रूप प्रदान किया मानों ऋषि स्वयं कायाकल्प करके कवि के रूपमें उद्भूत हो गया है। द्वितीय अध्यायमें दोनों महाकवियोंके कथा शिल्प पर विस्तृत तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इस संदर्भ में दोनों कवियों के उद्देश्य एवं वस्तु संगठन की

कलात्मकता को समझाने का प्रयास किया गया है। आद्र यतन तुलसी एवं बाल्मीकि पर जो तुलनात्मक अध्ययन प्राप्त है उनमें कथा तत्वों को इस प्रकार अलग करके अध्ययन नहीं किया गया। तृतीय अध्याय पात्र निरूपण एवं चरित्र निरूपण से सम्बन्धित है जिसमें दोनों काव्यों के पात्रों के वर्गीकरण पर प्रकाश डाला गया है। इसके अंतर्गत दोनों कवियों के चरित्र-चित्रण पद्धति, मनोवैज्ञानिक निरूपण, आदर्शवादिता तथा उनकी यथा वादिता को समझाने की चेष्टा की गई है। चतुर्थ अध्याय में दोनों महाकवियों के प्रकृति चित्रण और वस्तु वर्णन की कलात्मकता की अभिव्यक्ति की गई है। इस अध्ययन के अन्त में सप्त सूत्री निष्कर्ष दिया गया है। इसमें उन्होंने स्वीकार किया है कि तुलसी का प्रकृति चित्रण कथा की संक्षिप्तता एवं साहित्यिक उत्कर्ष के कारण दब सा गया है। महाकाव्योचित प्रकृति चित्रण की जैसी सर्वाङ्गीणता और उदात्तता रामायण में है वैसी मानस में नहीं मिलती। जहां तक प्रकृति पर्यवेक्षण का प्रश्न है इसमें बाल्मीकि तुलसी से बहुत आगे उन्हें प्रतीत हुए हैं। जहां तुलसी का प्रकृति वर्णन एक ओर कलात्मक एवं उत्कृष्ट है वहां दूसरी ओर बाल्मीकि का पूर्णतः नैसर्गिक। डॉ० साहब के बिचार से तुलसी का प्रकृति वर्णन भक्ति से ओत-प्रोत है जब कि बाल्मीकि रामायण में प्रकृति का मानवीकरण हुआ है।

पञ्चम अध्याय में दोनों महाकाव्यों का रस निरूपण तुलनात्मक दृष्टि से किया गया है। डॉ० साहब ने अपनी इस विवेचना के आधार पर यह सिद्ध किया है कि तुलसी का मानस भक्ति रस से ओतप्रोत है। अन्त में निष्कर्ष रूप उन्होंने स्वीकार किया है दोनों महाकाव्यों में उत्कृष्ट रसों के व्यापक वर्णन

प्रस्तुत किए गए हैं। मानस को उन्होंने सभी गुणों का विश्व-कोश माना है। डॉ० साहब ने तुलसी को उन महाकवियों में से एक माना है जिन्होंने भक्ति रस को रस की ऊँचाइयों तक पहुंचाने का प्रयास किया है। छठे अध्याय में काव्य शैली के अंतर्गत भाषा, छन्द, अलङ्कार, सम्वाद और काव्य रूप की दृष्टि से तुलना की गई है। उनका कथन है कि यद्यपि दोनों कवियों की भाषा और छंद अलग हैं फिर भी इन काव्य तत्वों के प्रति उनके दृष्टिकोण एवं व्यवहार को समझने समझाने की चेष्ठा की गई है। इस अध्याय के निष्कर्ष में आठ सूत्र प्रस्तुत किए गए हैं डॉ० साहब ने स्वीकार किया है कि यद्यपि दोनों कवियों की दृष्टि आदर्शवादी है और दोनों ने अपने काव्य के माध्यम से अपने आदर्शों को प्रस्तुत किया है परन्तु तुलसी ने प्रचार शैली अपनायी है बाल्मीकि ने नहीं। उनका मत है कि यद्यपि दोनों कवियों ने अपनी विद्वता एवं पाण्डित्य प्रदर्शित करने का प्रयास नहीं किया परन्तु लोक भाषा एवं लोक तत्वों से परिपूर्ण होने के कारण तुलसी के मानस की लोक प्रियता बाल्मीकि से आगे है। दोनों कवि एक साथ पूर्व कवियों से भी प्रभावित हैं। अलङ्कार की दृष्टि से वाल्मीकि उपमा के जहां एक ओर सम्राट हैं तो तुलसी रूपक के। उनका यह भी कहना सत्य है कि दोनों महाकाव्यों का हृदय पुराण से तथा शरीर विविध शास्त्रीय उपादानों से निर्मित हुआ है। अंतिम अध्याय में दोनों महाकवियों की मूल-भूत एकता तथा उनके अंतर का सापेक्षिक महत्व तथा उनका भारतीय जन-जीवन पर प्रभाव का आकलन किया गया है। इस उपसंहार में बाल्मीकि एवं तुलसी के विचारों एवं आदर्श तथा उनके जीवन दर्शन में उतना अंतर नहीं है जितना उनकी काव्य शैली तथा युग की भिन्नता के कारण प्रतीत होता है। भारतीय जीवन का उत्थान जिस

आदर्श को लेकर बाल्मीकि रामायण का निर्माण हुआ है उसकी मंजिल निश्चय ही मानस में अपनी परिपूर्णता को प्राप्त करती है। अंत में नारी समाज का दोनों महाकाव्यों में चित्रण का तुलनात्मक अध्ययन देकर इस ग्रंथ को समाप्त किया गया है।

नेपाली महाकवि भानुभक्त का रामचरित-मानस से तुलनात्मक अध्ययन

(डा० कमला माया, संस्कृत्यायन, १६६०)

यह शोध प्रबन्ध डॉ० कमला माया द्वारा आगरा विश्वविद्यालय के तत्वावधान में सन् १६६० में प्रेषित किया गया था। इसका प्रकाशन हो चुका है। इस ग्रन्थ में कुल चार अध्याय हैं। अंतिम अध्याय में एक निष्कर्ष भी प्रस्तुत किया गया है। डॉ० साहिबा ने प्रारम्भ में स्वीकार किया है कि भानुभक्त में वही स्थान रखते हैं जो विशाल हिन्दी क्षेत्र में तुलसी का है। उनके विचार से उनमें एक महाकवि की प्रतिभा थी परन्तु कतिपय सांसारिक कठिनाइयों से वह उन ऊंचाइयों तक नहीं पहुँच सके जहां तक तुलसी पहुँचे थे। यह मानना अत्यन्त समीचीन प्रतीत होता है कि नेपाली जनताको उन्हीं की भाषामें तुलसीको लोकप्रिय बनाने में भानुभक्त का महत्वपूर्ण योग था। निश्चय ही यह शोध ग्रंथ नेपाली जनता को तुलसी से परिचित कराने में तथा भानुभक्त को हिन्दी प्रेमियों से परिचित कराने में महत्वपूर्ण कार्य करता है। अध्याय प्रथम में नेपाली एवं नेपाली क्षेत्रादि पर विचार प्रगट किया गया है। इस बोली की उपबोलियों का संक्षिप्त परिचय देते हुये वहां के प्रमुख शासकों के शासन-काल का ऐतिहासिक वर्णन प्रस्तुत किया गया है। यह अध्याय एक प्रकार से भारतीय अध्येताओं के लिए नेपाली भाषा तथा उसके संक्षिप्त इतिहास से जानकारी प्रदान करने का साधन प्रदान करता है और भानुभक्त की पृष्ठ भूमि भी स्पष्ट करता है। इसके

उपरांत नेपाली कवि के पूर्ववर्त्ती कवियों पर विहंगम दृष्टिपात करते हुये उनके समकालीन कवि रघुनाथ भट्ट का भी विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

द्वितीय अध्याय में भानुभक्त कवि का नेपाली साहित्य में स्थान निर्धारित किया गया है। इस संदर्भ में डॉ० साहिबा ने महाकवि भानुभक्त के सम्बन्ध में कही हुई अन्य विद्वानों की उक्तियां भी प्रेषित की हैं। इसी स्थान में महाकवि की जीवनी तथा तात्कालिक परिस्थितियों पर भी सूक्ष्म दृष्टि डाली गई है। कवि की प्रमुख कृतियों पर प्रकाश डालते हुये रामायण एवं अन्य चार रचनाओं पर व्यापक रूप से विवेचन किया गया है। भानुभक्त जी ने २७ वर्ष की उम्र में अपनी रामायण प्रारम्भ कर १२ वर्षों में उसका निर्माण किया था। इस रामायण का प्रथम खण्ड मानस से प्रभावित है और जहां जहां नेपाली जीवन की झांकियां कवि ने प्रस्तुत की हैं वहां का वर्णन यथार्थ-वादी हो गया है। इस अध्ययन से यह सिद्ध किया है कि जिस प्रकार तुलसी का मानस कई वर्षों की अवधि में निर्मित हुआ है उसी प्रकार भानुभक्त की रामायण भी कई वर्षों के अथक परि-श्रम से निर्मित हुई है। अध्याय तृतीय में दोनों रामायणों के आधार ग्रन्थों का विवेचन करते हुये डा० साहिबा ने स्वीकार किया है कि दोनों का आधार श्रोत अध्यात्म रामायण है। इसलिए दोनों रामायणों में पर्याप्त साम्य की संभावना है। इसके अनन्तर मुख्य आवान्तर प्रसंगों एवं कथाओं की एक तालिका उन्होंने प्रस्तुत की है जो एक ही रूप में दोनों रामा-यणों में व्यक्त की गई है। इस विवेचना के अतिरिक्त रामा-यणों में प्रयुक्त नामों की आवृत्ति एवं उनकी संख्या की तालिका भी प्रस्तुत की गई है। राम के चरित का प्रतिपादन करते हुए

दोनों रामायणों के चरित्रांकन की विशेषताओं पर उन्होंने प्रकाश डाला है। चतुर्थ अध्याय में दोनों कवियों के कवि कर्म का परीक्षण तुलनात्मक ढंग से किया गया है। डॉ० साहिबा ने दोनों महा कवियों के महत्व पर विचार करते हुये कतिपय विद्वानों की सम्मतियाँ दी हैं। इस सम्बन्ध में उनका मत है कि तुलसी संस्कृत एवं असंस्कृत दोनों प्रकार की परम्पराओं से अनुप्राणित थे। यद्यपि दोनों महाकवियों के रचना काल में लगभग २०० वर्षों का अंतर है परन्तु फिर भी दोनों कवियों के काव्यों में पर्याप्त समानता पाई जाती है। भानुभक्त जीवन भर तुलसी के प्रकार ही संघर्ष करते रहे। भानुभक्त जी ने अध्यात्म रामायण के प्रसंगों के उपयोग में उतनी स्वतंत्रता नहीं अपनाई जितनी की तुलसी ने दिखलाई है। शोधकर्त्ता के अनुसार किसी उदात्त कविता की कसौटी उनकी जन-मानस की लोकप्रियता है। लोकप्रियता की दृष्टि से दोनों कवियों को पर्याप्त सफलता मिली है। और दोनों का आदर अपने जन मानस में एक सा है। अंत में डॉ० साहिबा का मत है कि कतिपय बातों में दोनों कवियों में मतभेद होने पर भी जहाँ तक जन-मानस में शासन करने का प्रश्न है उसमें तुलसी और भानुभक्त समान हैं।

—:०:—

तुलसी का सामाजिक दर्शन

(डा. विष्णुशर्मा मिश्र, १९६०)

डॉ० विष्णुशर्मा मिश्र का यह शोध प्रबंध सन् १९६० में लखनऊ विश्व विद्यालय की पी–एच० डी० उपाधि के लिये प्रस्तुत किया गया था। यह अब तक अप्रकाशित है। इसमें कुल आठ अध्याय हैं। डॉ० मिश्र ने प्रथम अध्याय में गोस्वाली तुलसीदास युगीन परिस्थितियों का विश्लेषण प्रस्तुत किया है। इसमें मुगल शासन और उस काल के समाज का ऐतिहासिक विवरण प्रेषित किया गया है। डॉ० मिश्र का अभिमत है कि तुलसी ने अपने मानस में तत्कालीन परिस्थितियों का बहुत ही मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया है। लंकाराज शासन एवं कलि वर्णन में उनके युग के अत्याचारों की झांकी देखी जा सकती है। उस समाज के परिष्कार हेतु ही तुलसी ने एक आदर्श परिवार, आदर्श समाज एवं राज्य का चित्र प्रस्तुत किया है। द्वितीय अध्याय में गोस्वामी तुलसीदास के काव्य का प्रेरणा श्रोत, समाज में इस तथ्य के प्रतिपादन का प्रयास किया गया है कि समाज कल्याण की बलवती स्पृहा ही उनके काव्य की प्रेरक है। निश्चय ही उनका काव्य सामाजिक साधना का पुल है। उनके काव्य में समाज के पोषक तत्वों के प्रजनन की शक्ति और घातक तत्वों के उच्छेदन की शक्ति विद्यमान थी। तृतीय परिच्छेद में गोस्वामी जी की सामाजिक धारणा पर प्रकाश डाला गया है। डॉ० मिश्र के विचार से तुलसी के लिये वर्णाश्रम धर्म ही सामाजिक संगठन का मेरु-दण्ड है। तथा वर्ण केवल अधिकार का सूचक मात्र नहीं है वरन् हमें दायित्व की ओर उन्मुख

कराने वाला तत्व है। राम-राज्य के सभी नरनारी परमपद के अधिकारी थे। इसे डॉ० मिश्र सामाजिक मोक्ष के रूप में स्वीकार करते हैं। इसके अनन्तर सामाजिक नियंत्रण और आध्यात्मिक नियन्त्रण शीर्षक में हमें नूतन गवेषणा का आभास मिलता है। वर्णाश्रम धर्म की प्रतिष्ठा, सामन्तवाद की प्रतिष्ठा ब्राह्मणवाद, एवं शूद्रावमानना आदि विषयों पर भी प्रकाश डाला गया है। चतुर्थ परिच्छेद गोस्वामी तुलसीदास की राजनीतिक धारणा पर प्रकाश डालता है। देश की दरिद्रता, निर्धनता, दुकाल, दुख, एवं दुरित-दुराव की विषम स्थिति में कवि का विश्वास था कि राजनीति के क्षेत्र में लोक हितकारी रामराज्य के आदर्शों की प्रतिष्ठा से सुख, सम्पदा, सुकाल का वातावरण लाया जा सकता है। डॉ० साहब के विचार से बहुजन हिताय वाला राज्य ही जनता का राज्य है। इसे वे साधुमत, लोकमत, एवं नृप नीति सम्मत ही स्वीकार करते हैं। पंचम अध्याय में गोस्वामी तुलसीदास जी की पारिवारिक धारणा को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। भारतीय विचार से परिवार मानव की अमरत्व भावना का फलित रूप है। डॉ० मिश्र के विचार से राम परिवार भारतीय आदर्श पारिवारिक धारणा का मूर्त रूप है। निश्चय ही यह व्यवहारिक जीवन का सत्य है। षष्ट परिच्छेद में उनकी व्यक्ति सम्बन्धी धारणा का निरूपण किया गया है। डॉ० साहब के विचार से विकासोन्मुख समान निर्माण के निमित्त राम-भरत तत्व के उद्भावक तथा ईश्वरत्व के उद्घाटक के रूप में अवतरित हुए और सीता इसी प्रकार नारी के रूप में। तुलसी की नारी 'अवमानना का भी यही विश्लेषण किया गया है। सप्तम परिच्छेद गोस्वामी जी की धर्म सम्बन्धी धारणा पर व्यापक प्रकाश डालता है। डॉ० मिश्र के विचार से तुलसी ने व्यक्ति, समाज,

राज्य के धर्म को सर्व हित साधन की भावना से सुनिश्चित एवं परिचालित किया है। इन धर्म विषयक उल्लेखों में धर्म का स्वरूप निश्चित हुआ है। इस रूप में इस परिच्छेद में सन्निविष्ट धर्म, व्यक्ति धर्म, पुरुष धर्म, नारी धर्म, समाज धर्म और राज-धर्म द्रष्टव्य है। गोस्वामी जी के आध्यात्मिक विचारों की सामाजिकता अष्टम परिच्छेद का विवेच्य विषय है। डॉ० मिश्र के विचार से तुलसी के आध्यात्मिक विचार जीवन से अनुप्राणित, जीवन की आवश्यकताओं के पूरक हैं परन्तु तुलसी को यथार्थ जगत का ही रूप प्रिय था। उनका विश्वास है कि लौकिक जीवन की उज्जवलता से पारिलौकिक जीवन स्वतः परिष्कृत हो जाता है। इसी कल्पना में उनके आध्यात्मिक विचारों की सामाजिकता सन्निहित है। समाज शासन के परिष्कार के लिए उद्भव, स्थिति संहार की शक्तियों से युक्त काव्य के माध्यम से व्यक्ति, परिवार, समाज, राज्य और धर्म का किस प्रकार का स्वरूप प्रस्तुत है। इस प्रकार से प्रस्तुत शोध प्रबंध तुलसी की सामाजिक विचारधारा का बहुत ही व्यापक परिक्षेत्र में अध्ययन प्रस्तुत करता है और इसमें राज-नीति, समाज नीति अध्यात्म सभी तत्व समाहित हो गये हैं।

तुलसी की काव्य-कला

(डा० भाग्यवतीसिंह, १९६०)

प्रस्तुत शोध प्रबंध डॉ० भाग्यवतीसिंह द्वारा सन् १९६० में लखनऊ विश्वविद्यालय की पी-एच.डी. उपाधि हेतु प्रेषित किया गया है। यह ग्रन्थ प्रकाशित हो गया है। इसमें कुल द्वादस अध्याय है। इस ग्रन्थ की भूमिका में शोधकर्त्ता ने स्वीकार किया है कि गोस्वामी तुलसीदास की कृतियों का दर्शन चरित्र-चित्रण के आधार पर तो थोड़ा बहुत अध्ययन हुआ है किन्तु उनकी कला का विश्लेषण सर्वाङ्गीण रूप से नहीं किया गया है। उसी कार्य की पूर्ति इस शोध प्रबंध में की गई है। प्रथम अध्याय में 'कविता और कला' शीर्षक में कविता के स्वरूप कला के विभिन्न अंग तथा भाषा आदि के विषयों में उनके दृष्टिकोण की विवेचना की गई है। दूसरे अध्याय में गोस्वामी जी के रस, भाषा, ध्वनि, वक्तोक्ति भाषा के विषय में अनके दृष्टिकोण प्रस्तुत किये गये हैं। तीसरे अध्याय में तुलसी की कला में मर्यादा और औचित्य' पर विशेष प्रकार से प्रकाश डाला गया है। इस विवेचना में यह नवीनता दिखाई देती है कि मर्यादा और औचित्य को गोस्वामी जी के काव्य की सूद्म युक्तियों द्वारा अलग अलग व्यक्त किया गया है। चौथा अध्याय तुलसी की शब्द कला से सम्बन्धित है। इस अध्याय के अंतर्गत काव्य शास्त्रीय एवं सामान्य दृष्टियों से तुलसी के शब्दों की कलात्मकता की छान-बीन की गई है। पांचवें अध्याय में तुलसी के संगीत एवं चित्रात्मकता की विवेचना की गई है। इसके अंतर्गत विभिन्न पदों की राग-रागनियों को लेकर गोस्वामी जी का संगीत

नैपुण्य और उनकी चित्रात्मकता पर बड़ी मार्मिकता पूर्ण प्रकाश डाला गया है ।

छठे अध्याय में तुलसी की अंलकार योजना पर विचार किया गया है। इसमें तुलसी की कला का परीक्षण विभिन्न अलंकारों को दृष्टि में रखकर किया गया है। सातवां अध्याय कवि के प्रबंध सौष्ठव और वर्णन पद्धति से सम्बन्धित है। इसके प्रबन्ध भाग में मानस की कथा वस्तु का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इसके दूसरे भाग में गोस्वामी जी की वर्णन पद्धति एवं उनके प्रकृति चित्रण पर विचार किया गया है। डॉ० साहिबा के विचार से तुलसी ने प्रकृति की नैसर्गिक विभूतियों से दूर ऊँचाई के वातावरण से उठकर देखने का प्रयत्न ही नहीं किया है वरन् उसके निकट जाकर उसके विशाल और लघु उर्वर एवं अनुर्वर उपादानों के साथ अपना सामीप्य स्थापित करने की चेष्टा भी की है। आठवें अध्याय में तुलसी के चरित्र-चित्रण की कला पर प्रकाश डाला गया है। नवें में छंद योजना एवं संवाद योजना की कला पर तथा दसवें अध्याय में तुलसी के भाव वर्णन एवं रस निरूपण को विशेष रूप से विवेचित किया गया है। एकादश अध्याय में तुलसी की शैली एवं उक्ति वैचित्र्य की कला पर विवेचन प्रस्तुत किया गया है। द्वादश अध्याय उपसंहार के रूप में है। इसमें गोस्वामी जी की समग्र कला का मूल्यांकन प्रस्तुत किया गया है। इस प्रसंग में अन्य कवियों से उनका तुलनात्मक अध्ययन भी किया गया है। इस प्रकार से इस शोध प्रबंध में तुलसी की काव्यकला के सर्वाङ्गीण पक्षों का विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

—:०:०:—

तुलसी की कवियत्री प्रतिभा

(डा० श्रीधर सिंह, १९६१)

यह शोध प्रबंध डॉ० श्रीधर सिंह द्वारा सन् १९६१ में काशी विश्वविद्यालय के लिये पी० एच० डी० उपाधि हेतु प्रेषित किया गया था। इसका प्रकाशन अभी तक नहीं हुआ। इसमें कुल तेरह परिच्छेद हैं और सम्पूर्ण सामग्री तीन खण्डों में विभक्त है। प्रथम खण्ड में कर्ता के विचार से, द्वितीय में कृति के विचार से तथा तृतीय खण्ड में भावक के विचार से तुलसी की कवियत्री प्रतिभा का अलग अलग विवेचन किया गया है। निवेदन प्रकरण में डॉ० सिंह ने स्वीकार किया है कि वस्तुतः तुलसी के जीवन चरित उनकी कृतियों और दार्शनिकता तथा सामाजिक एवं राजनीतिक मान्यताओं पर जितना कार्य किया गया है उतना उनके कवि कर्म के परखने में नहीं किया गया है। इसी कवि कर्म का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण शोध प्रबंध का महत्व पूर्ण विषय है। विषय प्रवेश में काव्य के प्रमुख तीन प्रेरक तत्वों पर प्रकाश डाला गया है। (१) प्रतिभा (२) व्युत्पत्ति (३) अभ्यास। डॉ० सिंह का मत है कि बिना प्रतिभा के उत्कृष्ट काव्य की रचना सम्भव ही नहीं है। इस प्रतिभा के दो प्रकार उन्हें मान्य है। (१) कवियत्री (२) भावयत्री। प्रथम कविता से सम्बन्ध रखती है। दूसरे का रूप कृति से प्रथक सामाजिक भाव से होता है। कर्ता पक्ष में उनका निवेदन सीप और स्वाती के बूँद से सम्बन्धित है। डॉ० साहब के विचार से मंगलाचरण का श्लोक लोक मंगल और काव्य तत्वों का सुन्दर सामंजस्य

प्रस्तुत करने में समर्थ है। खण्ड प्रथम के परिच्छेद प्रथम में महाकवि के जीवन दर्शन को प्रस्तुत किया गया है। कवि को उन्होंने द्रष्टा एवं स्रष्टा दो रूपों में देखा है। उनके विचार से जिन महापुरुषों का जीवन दर्शन जितना प्रौढ़ होता है उतनी ही उसकी कविता सार्वभौमिक एवं सार्वकालिक होती है। उनके विचार से कवि ने (१) दैन्य के स्वरूप (२) दैन्य के कारण (३) दैन्य का निवारण इन्हीं त्रिकोणों को स्पष्ट करने में अपना सारा काव्य सर्जित कर दिया था। इस विवेचना के निष्कर्ष में उन्होंने स्वीकार किया है कि अनुदात्त दैन्य का निवारण ही तुलसी के जीवन का परम लक्ष्य था। कवि ने क्रमशः दैन्य को परिष्कृत करके उसे मोक्ष की ओर उन्मुख किया है। इसके दो साधन उन्हें सर्व सुलभ दिखाई पड़े (१) भक्ति के माध्यम से (२) साहित्य साधक के माध्यम से। डॉ० साहब ने इस विवेचना के आधार पर तुलसी को सही रूप में मनोरोग चिकित्सक तथा भावी समाज निर्माता एवं इन्जीनियर स्वीकार किया है।

दूसरे परिच्छेद में 'अन्तः प्रेरणा' के अन्तर्गत तुलसी के काव्य प्रेरक तत्वों पर प्रकाश डाला गया है। इसे ही वे सत्साहित्य की जननी मानते हैं। डॉ० सिंह ने तुलसी की कृतियों को अन्तः प्रेरणा की कसौटी पर चार भागों में विभक्त किया है। (१) मुक्त अन्तः प्रेरणा के काव्य—विनय पत्रिका, कृष्ण-गीतावली, कवितावली, वरवै रामायण (२) अर्द्ध मुक्त—नहछू, जानकी एवम् पार्वती मङ्गल (३) वद्ध अन्तः प्रेरणा—वैराग्य संदीपनी, रामाज्ञा, दोहावली (४) मुक्त वद्ध अन्तः प्रेरणा—मानस। तृतीय परिच्छेद काव्य निर्माण की आभ्यांतरिक प्रक्रिया का विवेचन प्रस्तुत करता है। इसमें समाधि सम्बन्धी विचार प्रगट किए गए हैं। महाकाव्य की रचना में इसकी वे नितान्त आवश्यकता समझते हैं।

द्वितीय खण्ड में कृति की दृष्टि से तुलसी की कवियत्री प्रतिभा पर चतुर्थ से एकादश परिच्छेद तक प्रकाश डाला गया है। चौथे परिच्छेद में भाषा विनियोग पर व्यापक रूप से प्रकाश डाला गया है। पांचवें में पद संघटन के दृष्टिकोण से तुलसी की रचनाओं पर विचार किया गया है। छठवें परिच्छेद में कवि के अभिव्यञ्जन कौशल पर प्रकाश डाला गया है जिसमें तुलसी की अभिव्यञ्जना पर शास्त्रीय दृष्टि से विचार करके उनकी शब्द शक्ति का विवेचन तुलसी की कवियत्री प्रतिभा के आधार पर किया गया है। सातवें में लय सिद्धि पर मौलिक गवेषणा प्रस्तुत की गई है। डॉ० सिंह का इस सम्बन्ध में कथन है कि तुलसी ने जितना उत्कृष्ट प्रयोग शब्द शक्ति का किया है उतना ही लय का भी। इस प्रकरण में विभिन्न रागरागनियों के प्रयोग पर विशेष ध्यान दिया गया है। आठवें परिच्छेद में काव्य विधा चयन पर प्रकाश डाला गया है। अन्त में तुलसी की गीतत्रयी में गीतित्रयता के निर्वाह को परीक्षण का विषय बनाया गया है। नवम् परिच्छेद कथानक योजना से संबन्धित है जिसमें वस्तु विन्यास एवम् पात्रों पर प्रकाश डाला गया है। दशम परिच्छेद स्वभाव कल्पना से सम्बन्धित है। इस विवेचना के अन्तर्गत तीन प्रकार के स्वभावों का विवेचन किया गया है। (१) आदर्श (२) असामान्य (३) सामान्य। प्रथम वर्ग में राम, सीता और भरत तथा कौशिल्या आते हैं और दूसरे वर्ग में लक्ष्मण आते हैं और तीसरे वर्ग में दशरथ, विभीषण, सुग्रीव आदि आते हैं। ग्यारहवां अध्याय अबोध वोधन सम्बन्धी है। जिसमें महाकवि द्वारा प्रस्तुत भावों का सुन्दर विवेचन किया गया है। इसके अन्तर्गत मार्मिक प्रसङ्गों की परख अच्छी प्रकार से की गई है। इस प्रकार इस सम्पूर्ण खण्ड में तुलसी की कृति से सम्बन्धित प्रतिभा की परख आठ अध्यायों में विभिन्न शीर्षकों

के अन्तगत की गई है।

तृतीय खण्ड में डॉ० सिंह ने दो अध्यायों में भावक की दृष्टि से तुलसी की कवियत्री प्रतिभा पर प्रकाश डाला है। बारहवां अध्याय तुलसी साहित्य के साधक एवं उनके काव्य के सम्यक विवेचना से सम्बद्ध है। साहित्य के दो साध्य उन्हें स्वीकार्य हैं। (१) निजिविषा की पूर्ति (२) आनन्द की प्राप्ति। प्रथम की प्राप्ति अन्तःकरण की भावनाओं के परिष्करण एवं उन्नयन से सम्बन्धित है दूसरे में जीवन के विकास के लिए निर्माण की बात उन्हें मान्य है। साहित्य के आनन्द के लिए उन्हें दो बातें मान्य हैं। (१) साधन मार्ग की रमणीकता (२) साध्य की रसात्मकता। डॉ० सिंह का यह कथन सत्य है कि विश्व के किसी एक कवि के पास राम का इतना अथाह सागर नहीं प्राप्त किया जा सकता जितना कि तुलसी की विभिन्न कृतियों में भरा पड़ा है। तेरहवें और अन्तिम अध्याय में स्वान्तः सुखाय और लोक मंगल सम्बन्धी विचारों को तुलसी के कवियत्री प्रतिभा के आधार पर आलोचित किया गया है। डॉ० साहब ने तुलसी की लोक मंगल की कामना को दो रूपों में देखा है। (१) लोक भाव का उदय (२) लोक भाव की रक्षा। प्रथम का सम्बन्ध भावना पक्ष से है और दूसरे का सम्बन्ध वहिर्गत है। उनका मत है कि तुलसी की स्वयं की भावना साहित्य और भक्ति के सहारे खड़ी होकर निरन्तर परिष्कृत होकर समष्टि गत रूप धारण कर लेती है। निश्चित ही तुलसी की धारणा लोक मुखी अधिक है और आत्म मुखी कम। यहां तक डॉ० साहब का मत है कि उनके काव्य में राम ही लोक का रूप धारण कर लेते हैं और लोक ही राम का रूप। इसी निष्कर्ष के साथ यह शोध प्रबंध समाप्त होता है।

तुलसी का सामाजिक दर्शन

(डा० महेशप्रसाद चतुर्वेदी, १९६१)

यह शोध प्रबंध डॉ० महेशप्रसाद चतुर्वेदी द्वारा सन् १९६१ में सागर विश्वविद्यालय के लिए पी-एच० डी० उपाधि हेतु प्रेषित किया गया था। यह ग्रंथ अभी तक अप्रकाशित है। इसमें कुल बारह अध्यायों में समस्त सामग्री को सजाया गया है। आमुख में डॉ० चतुर्वेदी ने तुलसी के लोक संग्रह एवं लोक प्रिय रूप का आंकन किया है। प्रथम अध्याय में गोस्वामी तुलसीदास के आविर्भाव काल के पूर्व की राजनीतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, आर्थिक एवं साहित्यिक पृष्ठभूमि का विधिवत विवेचन किया गया है। उनका कथन है कि तुलसी के अवतरण की पूर्व पीठिका के लिये पूर्ण उपयुक्त था। इस युग की एतिहासिक विवेचना देकर अंत में तुलसी युग के पूर्व की सभी परिस्थितियों का विधिवत् अवलोकन किया गया है। द्वितीय अध्याय में तुलसी के समसामयिक परिवेश के अध्ययन के अन्तर्गत उनके युग की सभी परिस्थितियों का पुनः विवेचन किया गया है। उनका मत है कि तुलसी की जीवनी सम्बन्धी विविध विवाद होते हुए भी यह बात अकाट्य है कि तुलसी सं० १६०० से १६८० के मध्य अवश्य उपस्थित थे। स्थूल रूप से उनके जन्म के समय हुमायूँ का शासन काल था, बाल्यकाल में शेरशाह का। किशोरावस्था में हुमायूँ का यौवन तथा वार्धक्य समय में अकबर का और अन्तिम समय में जहाँगीर का शासन काल था। इस प्रकार से डॉ० साहब के विचार से तुलसी का अधिकांश समय मुगल युग के स्वर्ण काल में बीता

था। तृतीय अध्याय में तुलसी का जीवन वृत्त इसी तारतम्य में दिया गया है। चतुर्थ अध्याय में कवि का जीवन दर्शन प्रस्तुत किया गया है। पंचम अध्याय में गोस्वामी जी के राज धर्म सम्बन्धी सैद्धान्तिक आदर्शों का निरूपण है। षष्ट अध्याय में राजधर्म के व्यहारिक पक्ष का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इसमें भी दो खण्ड हैं। प्रथम खण्ड में उनके आदर्श राज्य के रूप में रामराज्य के स्वरूप का विशेष रूप से प्रतिपादन किया गया है तथा द्वितीय खण्ड में कलियुग का यथातथ्य चित्रण है। इस सम्बन्ध में डॉ० चतुर्वेदी का विचार है कि यदि रामराज्य तुलसी द्वारा प्रस्तुत शुक्ल पक्ष है तो कलिकाल उसका कृष्ण पक्ष।

सप्तम अध्याय में तुलसी के वर्णाश्रम धर्म एवं सामाजिक व्यवस्था के आदर्शों को प्रस्तुत किया गया है। इसी संदर्भ में माता पिता, गुरु-शिष्य, पति-पत्नी, परिजन अतिथि, शरणागत आदि की सामाजिक व्यवस्था से सम्बन्धित गोवास्मी जी के आदर्शों को निरूपित किया गया है। अष्टम अध्याय में तुलसी की नारी विषयक धारणा का प्राचीन एवं समसामयिक आदर्शों को प्रकाश में रखकर अध्ययन किया गया है। नवम् अध्याय में गोस्वामी जी द्वारा प्रस्तुत विप्र, गौ, सुर, असुर, सज्जन दुर्जन, आदि सब सामाजिक उपकरण तथा सत्यासत्य सत्संग, अहिंसा परोपकार की प्रवृत्तियों के लक्षणों तथा उनके सामाजिक मूल्यों पर भी प्रकाश डाला गया है। दशम् अध्याय में उनके पारिवारिक, राजनीतिक, सामाजिक आदर्शों की नैतिक भूमिका प्रस्तुत करके गोस्वामी जी की चरित्र योजना पर विधिवत् प्रकाश डाला गया है। अन्तिम अध्याय गोस्वामी जी के समाज दर्शन के ऐतिहासिक मूल्यों का निरूपण करता

है। इस प्रकार से अन्त में उन्होंने निष्कर्ष देकर अपने सम्पूर्ण अध्ययन का उपसंहार प्रस्तुत किया है। इसमें डॉ० चतुर्वेदी ने तुलसी के युग में उनकी आवश्यकता एवं उपयोगिता को ध्यान में रखकर उनके द्वारा प्रदत्त मानव समाज के प्रति उपस्कारक देनों को अत्यन्त संक्षिप्त रूप में विवेचन किया है। इसी कारण तुलसी का लोक संग्राहक रूप ही प्रमुखतः इस विवेचना में उभर कर बाहर आया है। तुलसी ने अपने अथक प्रयास से वर्णाश्रम की अस्त व्यस्तता को उदार भक्ति के माध्यम से व्यवस्थित करने का प्रयास किया है। वैसे इस सम्पूर्ण ग्रंथ में बहुत सी सामग्री ऐसी है जो अपने पूर्व के शोध प्रबन्धों में पिष्ट पेष्टित सामग्री को ही पेश करती है साथ ही बहुत से ऐसे प्रसंगों का इसमें अधिक विस्तार के साथ अध्ययन किया गया है जिसका आलोच्य विषय से सीधा सम्बन्ध नहीं है फिर भी लखनऊ विश्वविद्यालय द्वारा प्रेषित शोध प्रबन्ध से अधिक उपयोगी सामग्री इसमें प्रेषित नहीं की जा सकी।

तुलसी और भारतीय संस्कृति

(डा० रघुराजशरण, १९६१)

प्रस्तुत शोध प्रबंध डॉ० रघुराज शरण शर्मा द्वारा सन् १९६१ में आगरा विश्वविद्यालय के अन्तर्गत पी-एच० डी० उपाधि हेतु प्रेषित किया गया है। यह ग्रंथ अभी तक अप्रकाशित है। इसमें कुल सात अध्यायों में सम्पूर्ण सामग्री प्रस्तुत की गई है। डॉ० साहब ने प्राक्कथन में स्वीकार किया है कि तुलसी का महत्व उनकी साहित्यिक उपलब्धियों के कारण नहीं वरन् उनकी सांस्कृतिक अभिव्यक्ति के कारण है जिससे वे हिन्दू समाज एवं जीवन में श्वास प्रश्वास में बसे हुए हैं। प्रथम अध्याय में संस्कृति शब्द को उसकी व्यापक भूमिका में वर्णित किया गया है। इसके अन्तर्गत केवल भावना, विचार, रुचि, आचार एवं व्यवहार का प्रशिक्षित या परिष्कार मात्र शामिल नहीं है वरन इसकी एक परिष्कृत अवस्था भी है जिसकी व्याप्ति व्यष्टि एवं समष्टि के जीवन के किसी एक पक्ष विशेष में न होकर सम्पूर्ण जीवन में है। इसलिए डॉ० साहब के विचार में इसके क्रोड में धर्म दर्शन साहित्य समाज राजनीति तथा लोक व्यवहार सभी आ जाते हैं। दूसरे अध्याय में तुलसीदास के सांस्कृतिक व्यक्तित्व का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इसी विवेचना के संदर्भ में डॉ० साहब ने सांस्कृतिक संगठनों एवं संस्थाओं का प्रसङ्गवश अध्ययन भी प्रस्तुत किया है जो मध्य-युग के सांस्कृतिक संघर्ष काल से लेकर आज तक भारतीय संस्कृति को सुरक्षित किये हुए है। तीसरे अध्याय में मध्य युग के सांस्कृतिक संघर्ष का अनुशीलन करते हुये यह स्पष्ट किया गया है कि संतों, भक्तों एवं

साधकों के साधन वैभिन्य के कारण भले ही कुछ वाह्य विभिन्नताएँ एवं साम्प्रदायिक संकीर्णताएँ दृष्टिगोचर होती हैं परन्तु डॉ० साहब का मत है कि इस वैभिन्य में भी सांस्कृतिक एकता का सूत्र पिरोया हुआ है। इस प्रकार इस अध्याय के विवेचन में उन्होंने यह सिद्ध किया है कि मध्यकालीन भक्ति आंदोलन सांस्कृतिक पुनर्जागरण का वह आंदोलन था जिसमें व्यक्तिगत पारिवारिक, सामाजिक और राजनीतिक नवीन मूल्यों को स्थापित करके नवीन सांस्कृतिक चेतना का प्रादुर्भाव हुआ था। तुलसी की रामभक्ति इतनी विशद और व्यापक है कि समस्त समस्याओं का समाधान उसी में प्राप्त हो जाता है।

चौथे अध्याय में मध्ययुगीन सामन्तवादी प्रवृत्तियों के संदभ में तुलसी की सामाजिक एवं राजनैतिक चेतनाओं का अनुशीलन किया गया है और शोधकर्ता का विचार है कि तुलसी का कलिकाल वर्णन अपने युग की गिरी परिस्थितियों का परिणाम मात्र नहीं है। पंचम अध्याय में राम कथा का भारतीय संस्कृति में व्याप्ति का अनुशीलन किया गया है। इस संदर्भ में बौद्ध, जैन, वैदिक, पौराणिक एवं संस्कृत के काव्यों में वर्णित राम-कथा का विवेचन किया गया है। छठे अध्याय में भारतीय साहित्यिक मान्यताओं एवं परम्पराओं का भी संक्षिप्त रूप में अनुशीलन किया गया है जिससे दाय रूप में गोस्वामी जी ने पूर्ववर्ती साहित्यकारों से ग्रहण किया है। अंत में सप्तम अध्याय में लोक-संस्कृति का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इसमें व्यष्टि एवं समृष्टि के सांस्कृतिक स्तरों उनकी विभिन्न अंतर्दशाओं, परिस्थितियों एवं मनोवृत्तियों का परिचय मिलता है। इस अध्याय में वानरों एवं राक्षसों की संस्कृति के सम्बन्ध में कतिपय विद्वानों के मतों को उद्धृत कर बाल्मीकि एवं तुलसी के मतों को भी उद्धृत कर इन दोनों की संस्कृतियों का मूल्यांकन

कहा गया है। इस प्रकार से प्रस्तुत शोध प्रबंध में भारतीय संस्कृति के महान उपासक तुलसी की सांस्कृतिक उपलब्धियों का बहुत ही गंभीरता पूर्वक विवेचन किया गया है।

रामचरितमानस की अन्तर्कथाओं का आन्तरिक अध्ययन

(डा. वी० डी० पाण्डेय, १९६१)

प्रस्तुत शोध प्रबंध डॉक्टर वी. डी. पाण्डेय द्वारा सन् १९६१ में पी-एच० डी० की उपाधि हेतु आगरा विश्वविद्यालय में प्रेषित किया गया था। इसका प्रकाशन नहीं हुआ है तथा विस्तृत विवरण अप्राप्त है।

—:o:—

मलयालम कवि एषुत्छत्रकी रामायण का तुलनात्मक अध्ययन

(डा० एम० जार्ज, १६६१)

यह शोध प्रबंध सन् १६६१ में डॉ. एम० जार्ज द्वारा आगरा विश्व-विद्यालय के तत्वावधान में पी-एच० डी० उपाधि हेतु प्रेषित किया गया है। यह ग्रंथ अभी तक अप्रकाशित है। इसमें कुल ६ अध्याय हैं। डॉ० जार्ज ने इस ग्रन्थ की भूमिका में स्वीकार किया है कि हिन्दी भक्त साहित्य के नभो मण्डल में जाज्वल्यमान सूर्य तुलसी सम्पूर्ण हिन्दी संसार में पर्याप्त आदर की दृष्टि से देखे जाते हैं। परन्तु इन्हीं के समकालीन केरल एवं मलयालम के राम भक्त कवि तुचेन एवं एषुत्छत्र ने जो रामायणों की रचना की है उनका महत्व भी कम नहीं है। डॉक्टर साहब ने डॉ० बुल्के के इस मत से असहमति प्रकट की है कि ये रामायणें केवल अनुमान मात्र है। डॉ० एल. डी. वार्नेट के अनुसार एषुत्छत्र मलयालम के तुलसी माने जाते हैं। उनके विचार से ये मलयालम भाषा एवं साहित्य के पिता एवं केरलीय संस्कृति के संस्थापक हैं। निश्चय ही दोनों महाकवि मध्ययुगीन भारतीय संस्कृति के प्रतिनिधि, साहित्य निर्माता तथा तत्कालीन सभ्यता के प्रमुख प्रवर्तक थे। दोनों संत कवियों ने अपने व्यक्तित्व एवं कृतित्व के माध्यम से तत्कालीन समाज को अपने निर्दिष्ट आदर्शों में ढालने का प्रयास किया है। इन्हीं सब कारणों से डॉ० साहब ने इन दो कवियों की कृतियों का तुलनात्मक अध्ययन करना उत्तम समझा है।

प्रस्तुत शोध प्रबंध के प्रथम अध्याय में भक्ति पद्धति की उत्पत्ति, उसका स्वरूप तथा उसके विकास के इतिहास को प्रस्तुत किया गया है। इसमें हिन्दी और अहिन्दी, देशी तथा विदेशी भक्ति पर प्रभावों का भी मूल्यांकन किया गया है। अंत में भक्त कवियों की देनों को उल्लिखित कर दोनों कवियों का भक्ति साहित्य में स्थान निर्धारण किया गया है। द्वितीय अध्याय में दोनों कवियों के समय की राजनीतिक, सामाजिक एवं साहित्यिक पृष्ठ भूमि का अंकन किया गया है। इस संदर्भ में जैन, बौद्धधर्म, हीनयान, वज्रयान एवं मुस्लिम संस्कृति का केरलीय संस्कृति पर प्रभाव का मूल्यांकन भी कियागया है। डॉ०जार्ज का मत है कि दोनों महाकवियों ने अपने युग की घोर परिस्थितियों से संघर्ष करते हुए भी उन पर विजय प्राप्त का एक कल्याणकारी युग प्रवर्तक कार्य किया है। तृतीय अध्याय में अन्तः साक्ष्य एवं वहिर्साक्ष्य के आधार पर दोनों महाकवियों के जीवन-चरित्र को प्रस्तुत किया गया है। डॉ० साहब के विचार से उत्तर भारत में तुलसी तथा केरल में एषुत्च्छन क्रांतिकारी व्यक्तित्व को लेकर उपस्थित हुए थे। दोनों का जीवन मध्ययुगीन संत कवियों की भांति अनिश्चित है। अलौकिक चमत्कार दोनों कवियों के नाम में जोड़े गये हैं। तुलसी को माता पिता का सहारा नहीं मिला तथा पत्नी के रहते हुए वे महा कवि हुये थे जबकि एषुत्च्छन पत्नी के मरने के बाद। दोनों साधारण निम्न परिस्थिति से उठकर महानता के उच्च शिखर पर पहुँचे थे। तृतीय अध्याय में दोनों रामायणयुगीन समाज एवं संस्कृति का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। चौथे अध्याय में दोनों महाकवियों की काव्य रचना के उद्देश्य का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। अध्याय पंचम दोनों महाकवियों की प्रमुख रचनाओं पर प्रकाश डालता है। छठवां अध्याय दोनों महाकवियों

की काव्यकला का विधिवत् विवेचन प्रस्तुत करता है। सातवां अध्याय दोनों महाकवियों की सामाजिक एवं राजनैतिक अवस्थाओं का चित्रण प्रस्तुत करता है। अध्याय अष्टम दोनों महाकवियों की दार्शनिक एवं धार्मिक विचारधारा का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है। अन्तिम अध्याय में डॉ० साहब ने अपने इस तुलनात्मक अध्ययन का उपसंहार प्रस्तुत किया है। डॉ० जार्ज का कथन है कि दोनों महाकवियों ने राजनैतिक पराधीनता के अन्दर जीवन बिताकर अपनी सशक्त लेखनी से ऐसे बलशाली ग्रंथों का सृजन किया है जिन्होंने उत्तरभारत एवम् केरल दोनों स्थानों को गिरती हुई दशा से उबारने का संबल प्रदान किया। दोनों महाकवि काव्य कौशल एवं लोक-प्रियता में एक से हैं। इस प्रकार यह सम्पूर्ण ग्रन्थ इन दो महाकवियों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करके दो विभिन्न प्रदेशों को एक दूसरे से परिचित कराने का अभूतपूर्व कार्य करता है।

रामायणोत्तर संस्कृत काव्यों तथा मानसका तुलनात्मक अध्ययन

(डा. शिवकुमार शुक्ल, १९६१)

यह शोध प्रबंध डॉ० शिवकुमार शुक्ल द्वारा सन् १९६१ में आगरा विश्व-विद्यालय के तत्वावधान में पी-एच०डी० उपाधि हेतु प्रेषित किया गया था। यह युगवाणी प्रकाशन से सन् १९६४ में प्रकाशित हो गया है। इसमें कुल पाँच अध्याय हैं। डॉ० मिश्र ने अपने 'क्वचिदन्यतोपि' प्रकरण में स्वीकार किया है कि तुलसी संस्कृत साहित्य की प्रभाविष्णुता से इतने प्रभावित थे कि उन्होंने अनेक प्रसंगों में पद, पाद, तथा अर्थों की छाया को निस्संकोच अपने काव्यों में प्रतिविम्बित कर दिया है। यद्यपि यह कार्य मौलिक गवेषणा से परिपूर्ण नहीं है किन्तु संस्कृत के लगभग ३५० ग्रंथों से तुलसी के काव्य का तुलनात्मक अध्ययन करना तथा सारी सामग्री को एक सूत्र में पिरोना निश्चय ही परिश्रम साध्य कार्य है। डॉ० साहब का मत है कि यद्यपि तुलसी ने संस्कृत ग्रंथों से पर्याप्त सामग्री का चयन किया है परन्तु उसे इस प्रकार से कांट-छांटकर स्वीकार किया है कि उसमें परायेपन की गंध तक नहीं आती। प्रथम अध्याय राम-काव्य की परम्परा को सामान्य रूप से प्रस्तुत करता है। इस प्रकरण के अन्दर डॉ० साहब ने संस्कृत काव्यों को १२ उपखंडों में विभक्त किया है। इनमें प्रायः उन समस्त संस्कृत काव्यों को लिया गया है जोकि तुलसी के ऊपर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभाव डालने में समर्थ हुए हैं। इन शोध ग्रन्थों का संक्षिप्त

विवेचन प्रस्तुतकर मानसी कथा से साम्य एवं वैषम्य स्थापित किया गया है। इस विवेचना से स्पष्ट है कि संस्कृत साहित्य में रामकथा अत्यन्त लोकप्रिय है। उनके विचार से यद्यपि कतिपय काव्यों में राम को ब्रह्म रूप में चित्रित किया गया है परन्तु मानस जैसा कथा निर्वाह तथा वस्तु संगठन के औचित्य का स्वरूप अन्य किसी ग्रंथ में नहीं मिलता।

द्वितीय अध्याय में मानस की अधिकारक प्रासंगिक कथाओं का विवेचन किया गया है। इस संदर्भ में बालकांड के ३५, अयोध्या के ५०, अरण्य के ३१, किष्किन्धा के ८, सुन्दर के १४, लंका के ३०, तथा उत्तर के १० प्रसंगों की विवेचना की गई है। इस विवेचना में शोधकर्त्ता का दृष्टिकोण तुलनात्मक ही रहा है। डॉ० साहब के विचार से मानस उपसंहार एवं उपक्रम में सर्वथा मौलिक है। अध्याय तृतीय मानस की कलात्मक दृष्टि से रामायणोत्तर काव्यों से मानस की तुलना की गई है। इस विवेचन का मापदण्ड शास्त्रीय ही रहा है। इसमें आठ अधिकरणों में विवेचना प्रस्तुत की गई है। अध्याय चतुर्थ में मानस की अर्थ योजना से अन्य संस्कृत काव्यों की तुलना की गई है। इस विवेचना के निष्कर्ष में उन्होंने स्वीकार किया है कि तुलसी ने संस्कृत संदर्भ ग्रन्थों से भाष्य अवश्य ग्रहण किये हैं परन्तु अर्थ व्यंजना में जहां भाषा एवं शैली को अनुपयुक्त देखा वहां वे शुद्ध मन से अर्थग्रहण करके अपनी समर्थ एवं उत्कृष्ट भाषा में अभिव्यंजना प्रदान करते है। अंत में मानस एवं संस्कृत ग्रन्थों में निहित सिद्धांतों को चार भागों में बांटकर तुलना की गई है– (१) काव्य-सिद्धान्त (२) दर्शन साहित्य (३) धर्म सिद्धांत (४) नीति सिद्धांत। इसके अनन्तर पंचम अध्याय में समस्त अध्ययन का उपसंहार प्रेषित किया गया है। इसमें तुलसी के विशाल

पांडित्य, उनके अद्वितीय काव्य कौशल तथा उनकी अन्यतम संदर्भण कला का परिचय मिलता है। उनका कथन है कि नाना पुराण निगमागम के विभिन्न श्रोतों से मधु एकत्र करके उन्होंने अपनी अप्रतिम करियत्री प्रतिभा से जिस अलौकिक काव्य का सृजन किया है वह निःसंदेह भारतीय साहित्य में ही नहीं विश्व साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान बनाये रखने में समर्थ है। डॉक्टर साहब का यह कथन अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि मानस एवं अन्य संस्कृत ग्रन्थों में वही अंतर है जो कि एक कच्ची सामग्री एवं उससे निष्पन्न वस्तु में हुआ करता है।

जैन कवि स्वयंभूदेव कृत पउमचरित एवं तुलसीकृत मानसका तुलनात्मक अध्ययन

(डा. ओमप्रकाश दीक्षित, १९६१)

प्रस्तुत शोध प्रबंध डॉ० ओमप्रकाश दीक्षित द्वारा सन् १९६१ में आगरा विश्व विद्यालय के तत्वावधान में पी-एच०डी० उपाधि हेतु प्रेषित किया गया था। यह अभी तक अप्रकाशित है। इसमें कुल एकादश अध्यायों में सभी सामग्री संजोई गई है। प्रथम अध्याय विषय प्रवेश के रूप में प्रेषित किया गया है। इसमें शोध की आवश्यकता एवं कार्य की मौलिकता पर प्रकाश डाला गया है। द्वितीय अध्याय में काव्य के भेदों के साथ चरित्र काव्यों का विवेचन किया गया है। इस परम्परा में संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी के चरित्र काव्यों का उल्लेख कर उनके विविध स्वरूपों एवं प्रकारों पर प्रकाश डाला गया है। इसमें यह बात भी निर्दिष्ट की गई है कि चरित्र काव्यों को इन काव्यों ने कहां तक प्रभावित किया है। तृतीय अध्याय में महाकवि स्वयंभूदेव की जीवनी की तिथियों एवं उनकी प्रमाणिक रचनाओं का परिचय दिया गया है। इसमें तुलसी के पूर्ववर्ती राम कवियों एवं उनकी रचनाओं का संक्षिप्त परिचय देकर उनका खुलासा भी दिया गया है। इस विवेचना में तुलसी के मानस का गंभीरतापूर्वक अध्ययन किया गया है। पंचम अध्याय में दोनों महाकवियों की परिस्थितियों पर प्रकाश डाला गया है। इसमें दोनों कवियों की सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा भौतिक सभी प्रकार की परिस्थितियों का विवेचन किया गया

है। साथ ही डॉ० साहब ने यह भी परीक्षित करने का प्रयत्न किया है कि इन परिस्थितियों ने उन्हें कहां तक प्रभावित किया है। छठवें अध्याय में दोनों महाकवियों के महाकाव्यों के कथानकों का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। दोनों की कथा वस्तुओं के सम एवं विषम प्रसंगों की अलग अलग तालिकायें देकर उन्होंने अंत में अपना निष्कर्ष प्रस्तुत किया है। इन प्रसंगों में दोनों महाकाव्यों के प्रमुख पात्रों का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। अष्टम अध्याय में भाव, रस की दृष्टि से दोनों महाकाव्यों का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। सम्बन्धित सामग्री को डॉ० साहब ने अलग अलग रसों के अंतर्गत रखकर उनके रसात्मक प्रसंगों को भी उद्धृत किया है।

नवम् अध्याय में दोनों महाकाव्यों के कलापक्ष का सापेक्षिक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। भाषा, छन्द, अलंकार, गुण, रीति, वृत्ति, दोष, सम्वाद, प्रकृति चित्रण और वर्णनात्मक शक्ति आदि का तुलनात्मक दृष्टि से विवेचित किया गया है। दशम अध्याय में पदम चरित्र का महत्व और मानस पर उसके प्रभाव का विस्तृत विवेचन है। प्रभाव सम्बन्धी सामग्री को डॉ० साहब ने तीन भागों में विभक्त किया है। (१) मानस पर उनका स्पष्ट प्रभाव (२) उसे दबी जबान से स्वीकार करना (३) मानस पर विलुप्त प्रभाव न मानना। अंतिम अध्याय में परिशिष्ट रूप में ऐसे प्रसंग उठाये गये हैं जो दोनों कृतियों में एक से व्यक्त किये गये हैं। इस प्रकार से डॉ० दीक्षित ने दोनों महाकाव्यों का तुलनात्मक अध्ययन करके यह सिद्ध कर दिया है कि दोनों कवियों की अभिव्यक्तियों में पर्याप्त साम्य प्राप्त होता है। कुछ वैषम्य भी अवश्य मिलता है परन्तु यह वैषम्य केवल काल एवं स्थान के अंतर के कारण ही है। डॉ० साहब ने इन दोनों कवियों को अक्षुण्ण एवं अपरिछिन्न पथ के पथिक माना है।

रामचरित मानस एवं रामचन्द्रिका का तुलनात्मक अध्ययन

(डा० जगदीशनारायण अग्रवाल, १९६२)

डॉ० जगदीशनारायण अग्रवाल ने प्रस्तुत शोध प्रबन्ध सन् १९६२ में आगरा विश्वविद्यालय के तत्वावधान में पी-एच०डी० उपाधि हेतु प्रेषित किया था। यह ग्रन्थ अभी तक अप्रकाशित है। इसमें कुल सात अध्यायों में सामग्री रखी गई है। डॉक्टर साहब ने आमुख में स्वीकार किया है कि यद्यपि केशव एवं तुलसी के रचनाकाल में कुछ ही वर्षों का अंतर है परन्तु भिन्न वातावरण में पलने, बैठने, एवं प्रस्थित होने के कारण कुछ समीक्षकों ने उन्हें आपस में तुलना के लिये अनुपयुक्त ठहराया है, परन्तु शोधकर्त्ता ने इस सम्भावना को सार्थक करके प्रेषित किया है। प्रथम अध्याय में इस विषय की समीचीनता पर प्रकाश डालते हुए अपना मत प्रस्तुत किया है। द्वितीय अध्याय में दोनों कवियों की राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक तथा व्यक्तिगत परिस्थितियों का विवेचन प्रस्तुतकर परम्परा से चली आने वाली साहित्यिक एवं सांस्कृतिक प्रकृतियों का विश्लेषण किया गया है। इसमें जिस परम्परा का प्रभाव दोनों कवियों पर पड़ा है उसे विशेष रूप से उल्लखित किया गया है। तृतीय अध्याय में रामकथा के विभिन्न स्रोतों का उद्घाटन करके दोनों कवियों के कथानक एवं कथा शिल्पों पर प्रकाश डाला गया है। तथा उन प्रसंगों का भी उल्लेख किया गया है जो भिन्न-भिन्न रूप में व्यक्त किए गये हैं।

चतुथ अध्याय राम के व्यक्तित्व तथा अन्य पात्रों के परिचय से सम्बन्धित है। इसमें राम के पौराणिक एवं मनोवैज्ञानिक स्वरूप को सर्वप्रथम रूप से उभारने का प्रयास किया गया है। इसमें डॉ० अग्रवाल ने दोनों कवियों के यथार्थवादी एवं आदर्शवादी चरित्र-चित्रण का उल्लेखकर उनकी पारस्परिक तुलना का आधार प्रस्तुत किया है। राम के अतिरिक्त अन्य पात्रों का अध्ययन दो भागों में किया गया है (१) पुरुष पात्र। (२) स्त्री-पात्र। इसमें केवल प्रमुख पात्रों का अध्ययन किया गया है। इसी स्थल पर रामकथा के पात्रों में आरोपित शंकाओं का तर्क-पूर्ण निराकरण भी प्रेषित किया गया है। पांचवें अध्याय में दोनों कवियों के काव्यों का अतरंग एवं वहिरंग अध्ययन किया गया है। अतरंग के अंतर्गत डा० साहब ने दोनों के प्रबन्ध प्रवाह, नाट्य दृश्य, नाटक व्यजंना, रस निरूपण और प्रकृति-चित्रण आदि का अध्ययन किया है। छठे अध्याय में दोनों महाकवियों के आध्यात्मिक उद्देश्य एवं लक्ष्य को ध्यान में रख-कर दोनों की तुलना की गई है। इसी अध्याय में दोनों कवियों का विधिवत् तुलनात्मक अध्ययन कर डॉ० साहब ने केशव पर लगाये गये हृदयहीनता के आरोप को निराधार सिद्ध किया है। अपने पुष्ट प्रकरणों द्वारा उनके भाव पक्ष को प्रस्तुतकर यह सिद्ध किया है कि केशवदास जी एक शृंगारी कवि मात्र ही नहीं थे, परन्तु वे सच्चे आध्यात्मिक दृष्टि सम्पन्न कवि थे। अंतिम अध्याय विषय का उपसंहार प्रस्तुत करने में समर्थ है। अंत में डॉ० साहब ने परवर्ती कवियों को इन दोनों कवियों से प्रभा-वित स्वीकार किया है और इसका समापन कर दिया गया है।

—:०:—

तुलसीके काव्यका मनोवैज्ञानिक अध्ययन

(डा० अम्बिकाप्रसाद बाजपेयी १९६१)

यह शोध प्रबन्ध डा० अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी द्वारा सन् १९६१ में आगरा विश्वविद्यालय के लिए पी-एच० डी० उपाधि हेतु प्रस्तुत किया गया था। यह अभी तक अप्रकाशित है। इसमें कुल सात अध्यायों में सम्पूर्ण सामग्री संजोई गई है। डा० साहबने इस शोध का लक्ष्य निर्धारित करते हुए उपोद्धात में स्वीकार किया है कि इस शोध का लक्ष्य तुलसी के काव्य का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करना है। डा० बाजपेयी ने प्रमुख वैज्ञानिक वादों एवं विशिष्ट अध्ययन प्रणालियों को ध्यान में रखकर मानस का विवेचन इन्ही पर आधारित किया है। इस प्रबन्ध की विशेषता इस तथ्य में निहित है कि प्राच्य एवं पाश्चात्य मनोविज्ञान दोनों का तुलसी काव्य में समन्वय होता है। दोनों में विरोध कहीं नहीं दिखाई देता। प्रथम परिच्छेद में 'वाल मन' के विशेष सदंर्भ में तुलसी के काव्य में प्रस्तुत बालमन का विवेचन किया गया है। इसमें सामान्य बालमन एवं विशिष्ट बालमन के अन्तर्गत राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न के आदर्श बाल मन को उद्धरण देकर बाल मनो विज्ञान में अंकित गुणों की कसौटी में कसा गया है। दूसरे परिच्छेद में किशोर एवं वृद्धमन का विश्लेषण किया गया है। इसमें तुलसी के मानव विकास की पृष्ठभूमि में चित्रित व्यक्तियों को परीक्षित किया गया है। विकासात्मक मनोविज्ञान में किशोरा-

वस्था का प्रौढ़ावस्था से बृद्धावस्था तक एक तारतम्य में अध्ययन किया गया है और बाजपेयी जी का मत है कि मानस में किशोर व्यक्तित्व का उभार सही रूप से नहीं हो सका फिरभी रामका किशोर रूप आदर्श रूप में चित्रित किया गया है।

तृतीय परिच्छेद में नारी मन को सर्वाङ्ग रूप से चित्रित किया गया है। नारी मनोविज्ञान के क्रमिक विकास को तुलसी ने पार्वती के तप विषयक वार्ता में चित्रित किया है। सूर्पणखा को कामुक स्त्री का तथा आदर्शात्मिक एवं सामाजिक तरंग के प्रतीक के रूप में सीता का चरित्रांकन किया गया है। तुलसी के विचार से संलिग कामुकता संभव नहीं जिसकी पुष्टि आधुनिक मनोविज्ञान भी करता है। कवि ने निश्चय ही नारी के सामाजिक एवं गौण रूप को मनोवैज्ञानिक भूमिका में चित्रित किया है। 'कुटिल प्रबोधी कूबरी' वाला तथ्य मनोविज्ञान से भी सिद्ध हो जाता है। उनके विचार से तुलसी नारी चित्रण के प्रति न तो उदार है न अनुदार, उन्होंने नारी को उसके तात्कालिक रूप में चित्रित किया है। चतुर्थ परिच्छेद में सैनिक मन का विवेचन किया गया है। डा० साहब का मत है कि अहिंसा वादी संत मत इसका बाधक नहीं है क्योंकि ऐसे मत का कोई प्रथक मनोविज्ञान नहीं है। इस शीर्षक के अन्तर्गत सैनिक मनको तीन भागों में बांटा है (१) अनुशासन (२) नायकत्व (३) नैतिक शक्ति। तुलसी ने अनुशासन के लिए भय अनिवार्य माना है। सैन्य मन के रूप में राम और रावण संस्थागत नेता के रूप में प्रस्तुत किए गए हैं। पंचम परिच्छेद में असामान्य मनका विवेचन किया गया है। डा० बाजपेयी का मत है कि तुलसी के सभी पात्र सामान्य से श्रेष्ठ हैं और जिनपात्रों में हीनता आगई है उसका पर्य-

वसान श्रेष्ठ गुणों में करके दिखाया गया है। इस रूप में रामका चरित्र चित्रण द्रष्टव्य है। षष्ट परिच्छेद में समानमन का विवेचन है। कवि द्वारा प्रस्तुत विभिन्न प्रसंगों का उल्लेख करके डा० वाजपेयी ने समान मन की विशेषताओं का विवेचन किया है। अन्तिम परिच्छेद उपसंहार प्रस्तुत करता है। पूर्व परिच्छेदों में मनोविज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों के आधार पर तुलसी का मनोवैज्ञानिक परीक्षण किया गया है। डा. वाजपेयी ने प्रस्तुत प्रकरण में वैज्ञानिक वादों की कसौटी पर तुलसी के काव्य को परीक्षित किया है। इस क्रम में (१) टिचनर का मानस रचना वादत्य, विलियम नोंस का मनोविज्ञान (३) कार्यविवाद (४) व्यवहार वाद (५) चेतनिक मनोविज्ञान (६) फ्रायड का मनो विश्लेषण (७) गोस्टालटका मनोविज्ञान (८) हिन्दू मनोविज्ञान, इन सभी का विधिवत विवेचन कर डा० बाजपेयी ने स्वीकार किया है कि तुलसी के काव्य में सभी प्रकार के मनोवैज्ञानिक मत वर्तमान हैं परन्तु उनके युग तक इस प्रकार के मनोविज्ञान की नींव भी नहीं पड़ी थी। डा० साहब का यह भी विचार है कि तुलसी के काव्य में आधुनिक मनोविज्ञान को दिशा निर्देश करने की शक्ति समाहित है। इसी अध्ययन के आधार पर उन्होंने तुलसी को मनो-वैज्ञानिक कविके रूप में स्वीकार किया है। इस शोध ग्रन्थ में यह मत प्रबलता पूर्वक स्थापित हो गया है कि महाकवि ने साहित्य एवं मनोविज्ञान दोनों का समन्वय करने में समर्थता प्राप्त की है।

तुलसी की ~~अन्तरंग~~ अलंकार योजना

(डा. नरेन्द्रकुमार १९६२)

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध दिल्ली विश्वविद्यालय के तत्वावधान में डा० नरेन्द्र कुमार द्वारा सन् १९६२ में प्रेषित किया गया था। यह ग्रन्थ अभी तक अप्रकाशित है। उसमें कुल दस अध्याय हैं। प्रथम अध्याय भूमिका के रूप में ही रखा गया है जिसमें अलंकारों की सामान्य परिभाषा काव्य के लिए उसकी उपयोगिता, उसके प्रयोग औचित्य तथा अलंकारों के वर्गीकरण पर प्रकाश डाला गया है, द्वितीय अध्याय में तुलसी साहित्य में निबद्ध अलंकारों का शास्त्रीय विवेचन प्रस्तुत किया गया है। इसमें प्रमुख रूप से शब्दालंकारों का उल्लेख है। शब्दालंकारों में क्लिष्ट साध्य रूपों, चित्र, पहेलिका आदि का तुलसी ने बहिष्कार किया है ऐसा डा० साहब का मत है। इस में अनुप्रास एवं पुनरुक्ति का सर्वाधिक रूप में प्रयोग किया गया है। तीसरे अध्याय में भेदाभेद प्रधान सादृश्य मूलक अलंकारों के सम्बन्ध में तुलसी के काव्य को कसने का प्रयास दर्शनीय है। इन अलंकारों में तुलसी ने उपमा का सर्वाधिक प्रयोग किया है। इसके बाद अनन्वय, स्मरण का भी प्रयोग कवि ने यत्र तत्र किया है। चतुर्थ अध्याय में अभेद प्रधान सादृश्य मूलक अलंकारों में रूपक तथा उनके भेदों की व्याख्या दिखाते हुए तुलसी के साहित्य में उनके उपयोग तथा उसकी व्याख्या को दिग्दर्शित किया गया है। डा० साहब ने तुलसी की सभी कृतियों से इनके उपयुक्त उदाहरण प्रेषित किये हैं। तुलसी के काव्य में कहीं कहीं तो उत्प्रेक्षाओं की झड़ी सी लग गई है।

पंचम अध्याय में गम्योपगम्य सादृश्य मूलक अलंकारों का विवेचन किया गया है। इसके अंतर्गत प्रति वस्तूपमा, दृष्टान्त निदर्शना, व्यतिरेक, परिंकुरांकुर, अप्रस्तुत प्रशंसा, ललित, अर्थान्यास पर्यायोक्ति, व्याजस्तुति आदि अलंकारों का शास्त्रीय विवेचन देकर डा० साहब ने तुलसी के काव्य से उपयुक्त उद्धरण प्रेशित किए हैं। षष्ट अध्याय में विरोध गर्भ अलंकारों के संदर्भ में तुलसी के काव्य की परीक्षा की गई है। इसमें प्रमुख रूप से विरोधाभास, विभावना, विशेषोक्ति, साम्य, विचित्र अधिक व्याघात, असंगति, विषम आदि अलंकारों की काव्य सुषमा का वर्णन तुलसी के काव्य संदर्भ में किया गया है। सप्तम अध्याय में श्रंखला मूलक और गूढ़ार्थ प्रतीति मूलक अलंकारों की विधिवत उदाहरण सहित विवेचना की गई है। अष्टम अध्याय में न्याय मूलक अलंकारों में तर्क न्याय मूलक के अन्तर्गत काव्य लिंग, अनुदान, वाच्य मूलक के अंतर्गत क्रम, पर्याय, परिवृत्ति, परिसंख्या, विकल्प, समाधि, प्रतीति, तद्गुण, अतद्गुण, आदि अलंकारों की परिभाषा तथा उनके उपयुक्त उद्धरण प्रस्तुत किये गये हैं। नवम् अध्याय में अन्य अलंकारों की श्रेणी में अत्युक्ति, प्रहर्षण, असमर्ष, निरुक्ति, लोकोक्ति, छेकोक्ति, उदांत, शंकर आदि अलंकारों के उदाहरण देकर उनके प्रमुख अंगों को स्पष्ट किया गया है। दशम् अध्याय उपसंहार के रूप में प्रस्तुत है। डा० साहब का यह कथन महत्वपूर्ण है कि तुलसी एक भक्त कवि हैं उनके काव्य में सर्वत्र काव्य धर्म की अपेक्षा मोक्ष धर्म की प्रधानता है। अंत में डॉ० साहब ने कतिपय निष्कर्ष प्रस्तुत करके इस ग्रंथ को समाप्त किया है।

तुलसी के भक्त्यात्मक गीत

(डा. वचनदेव कुमार, १९६३)

डॉ० वचनदेवकुमार ने सन् १९६३ में पटना विश्वविद्यालय के तत्वावधान में पी-एच० डी० उपाधि हेतु प्रेषित किया था। इस शोध प्रबन्ध का प्रकाशन पटना से ही सन् १९६४ में हुआ। डॉ० साहब ने अपनी संपूर्ण सामग्री दो खण्डों में विभक्त की है। प्रथम खंड के दो अध्यायों में गीति-काव्य की परंपरा एवं उसकी पृष्ठ भूमि पर विचार किया गया है। प्रथम अध्याय में भक्ति के विकास की संक्षिप्त रूपरेखा प्रस्तुतकर यह दिखलाने का प्रयास किया गया है कि जो भक्ति ऋग्वेद से निसृत हुई वही अपने पूर्ण विकसित रूप में गीत काव्य में प्रवाहित हुई है। द्वितीय अध्याय में भक्त्यात्मक गीतों का विकास दिखलाकर विशेष प्रकार से विनय पत्रिका के गीतों का पूर्ण विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

द्वितीय खण्ड तुलसी की गीति कृतियों—गीतावली, श्रीकृष्ण-गीतावली, विनय-पत्रिका से सम्बन्धित है। इसमें कुल छः अध्याय हैं। इस खण्ड के प्रथम अध्याय में तुलसी की गीति-कृतियों का विषय की दृष्टि से परीक्षण किया गया है। डॉक्टर साहब ने इस अध्ययन में विनय-पत्रिका को सर्वोत्कृष्ट कृति के रूप में स्वीकार किया है। द्वितीय अध्याय में भक्ति शास्त्रीय दृष्टि से गीतों का अध्ययन किया गया है। इसमें विशेष रूप से तुलसी के गीतों में व्यक्त दर्शन तत्वों का विवेचन प्राप्त होता है। इसी अध्याय में भक्ति-शास्त्र में वर्णित प्रपत्ति या विनय की भूमि-

कात्र्यों का उल्लेख हुआ है और उनके आधार पर इन गीतों को विश्लेषित करने की चेष्ठा की गई है। चौथे अध्याय में भक्त्यात्मक गीतों को साहित्य शास्त्रीय दृष्टिकोण से परखा गया है। संगीत साहित्य के नियमों पर इन गीतों को कसकर डॉ० साहब ने तुलसी को कुशल संगीतज्ञ गीतकार के रूप में स्वीकार किया है। पांचवें अध्याय में तुलसी के भक्त्यात्मक गीतों की प्राक् तुलसी युग और पश्चात तुलसी युग के प्रमुख कवियों के भक्त्यात्मक गीतों से तुलना कर उनका मूल्यांकन किया गया है। इसी अध्याय में उन गीत-कृतियों को समक्ष रखकर यह परखने का प्रयास किया गया है कि विषय एवं काव्य में क्या सम्बन्ध है। छठवां अध्याय इस शोध प्रबंध का उपसंहार प्रस्तुत करता है। इसमें तुलसी के गीतों की जन-प्रियता पर प्रकाश डाला गया है। डॉ० साहब का मत है कि तुलसी के गीतों का संदेश लौकिक से पारलौकिक की ओर प्रस्थित करता है। इसलिए चारित्रिक निर्माण एवं नैतिक उत्थान के लिए डॉ० कुमार ने इसे तुलसी की गीता के रूप में स्वीकार किया है।

—:०:०:—

अध्यात्म रामायण का रामचरित मानस पर प्रभाव

(डा. रविदत्त निर्मल, १९६३)

यह शोध-प्रबन्ध आगरा विश्वविद्यालय के तत्वावधान में डॉ० रविदत्त निर्मल द्वारा सन् १९६३ में पी-एच० डी० उपाधि हेतु प्रेषित किया गया था। यह ग्रन्थ अभी तक अप्रकाशित है। इसमें सभी आलोच्य सामग्री आठ अध्यायों में रखी गई है। प्रथम अध्याय में साहित्यिक क्षेत्र में किये जाने वाले तुलनात्मक अध्ययन के महत्व तथा उन पर अभी तक किये गये विभिन्न अध्ययनों पर प्रकाश डाला गया है। इसमें मानस के अध्ययन के अद्यतन स्वरूप में समीक्षा एवं शोधों का संक्षिप्त विवेचन किया गया है। डॉ० निर्मल का कथन है कि मानस अध्यात्म से बहुत अधिक प्रभावित है। यहां तक कि मानस का रूप-विधान तथा उसका आदर्श उसमें पूर्णतः निहित है। इस अध्ययन को उन्होंने दो भागों में बांटा है (१) संशोधनात्मक (२) आलोचनात्मक। दूसरे अध्याय में अध्यात्म एवं मानस का सामान्य परिचय दिया गया है। इस परिचय के साथ दोनों महाकवियों की जीवनी, रचनाकाल, दोनों ग्रन्थों की पृष्ठ-भूमि तथा राम-कथा की विवेचना की गई है। तृतीय अध्याय में मानस एवं अध्यात्म की कथा वस्तु का संक्षिप्त रूप से अध्ययन किया गया है। यहां डॉ० निर्मल ने स्वीकार किया है कि मानस के समान अध्यात्म में साहित्यिक उत्कर्ष नहीं मिलता क्योंकि मानस एक साहित्यक ग्रन्थ है और अध्यात्म एक पौराणिक ग्रन्थ मात्र।

तुलना करके उन्होंने स्वीकार किया है कि दोनों की कथा के प्रणेता शंकर हैं, राम जन्म के कारण दोनों में एक से दिये गये हैं परन्तु अभिव्यक्ति में तुलसी ने पर्याप्त मौलिक अन्तर ला उपस्थित किया है। डॉ० साहब का तो यहां तक कहना है कि तुलसी की कथा जितनी अधिक अध्यात्म से प्रभावित है उतनी बाल्मीकि से नहीं। चतुर्थ अध्याय दोनों महाकाव्यों की चरित्र कल्पना का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है। इस विवेचना के आधार पर डॉ० साहब ने स्वीकार किया है कि तुलसी की चरित्र कल्पना अध्यात्म से कहीं अधिक श्रेष्ठ एवं मनोयोगपूर्ण है परन्तु उसका मुख्याधार अध्यात्म ही हैं। सभी पात्रों को राम भक्त बना देना तुलसी ने अध्यात्म से ही सीखा है। पंचम अध्याय में मानस पर अध्यात्म रामायण से काव्यगत प्रभाव का अंकन किया गया है। रूप विधान, भाषा, रस, छंद, अलंकार आदि में उन्हें मानस अध्यात्म से श्रेष्ठ प्रतीत हुआ है।

छठे अध्याय में अध्यात्म रामायण और मानस की भक्ति भावना का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इसके अन्तर्गत मायावाद, लोक संग्रह प्रवृत्ति, आदर्श राज्यकल्पना, आदर्श संयमित पारिवारिक जीवन का चित्रण, आदर्श मातृ, पितृ, दाम्पत्य तथा दास्यभक्ति का निरूपण, साम्प्रदायिक औदार्य भक्ति भावना, भक्ति के साधन आदि सभी विषयों में तुलसी अध्यात्म के ऋणी हैं यह डॉ० साहब का मत है। सातवें अध्याय में अध्यात्म रामायण के दार्शनिक विचारों का मानस में प्रभाव अंकित किया गया है। दार्शनिक मान्यताएँ, भक्ति का सिद्धांत पक्ष, राम तथा सीता की आधिदैविक सत्ता, आदि में अध्यात्म का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। परन्तु डॉ० साहब का मत है कि आध्यात्मिक दृष्टि से जितना अध्यात्म

रामायण सम्पन्न है उतना मानस नहीं है। अष्टम अध्याय उपसंहार के रूप में है। डॉ० साहब का मत है कि तुलसी ने भक्तिमर्यादा, लोक संग्रह, शक्तिशील, सौंदर्य आदि की दिव्य मन्दाकिनी बहाकर मानस को एक अलौकिक ग्रंथ के रूप में प्रस्तुत किया है। तुलसी ने अध्यात्म के दार्शनिक एवं भक्ति सम्बन्धी जटिल तत्वों को सरल, सुबोध एवं स्पष्ट रूपसे व्यक्त किया है। इस प्रकार से प्रस्तुत शोध प्रबन्ध अध्यात्म का मानस पर प्रभाव मूल्यांकित करने में पर्याप्त दूरी तक सफल हुआ है।

तुलसी के प्रबंध एवं प्रगीत का तुलनात्मक अध्ययन

(डा. रमेश कुमार बाजपेयी, १९६४)

यह शोध प्रबन्ध डॉ० रमेश कुमार बाजपेयी द्वारा सन् १९६४ में सागर विश्वविद्यालय के तत्वावधान में पी-एच० डी० उपाधि हेतु प्रेषित किया गया है। यह शोध प्रबन्ध अभी तक अप्रकाशित है। यद्यपि इस शोध प्रबन्ध का आलोच्य विषय तुलसी के प्रबन्ध एवं प्रगीत काव्य के तुलनात्मक अध्ययन से सम्बन्धित है परन्तु सम्पूर्ण ग्रंथ में तुलनात्मक अध्ययन कहीं भी नहीं किया गया। इसकी सम्पूर्ण सामग्री तीन भागों में विभक्त है। प्रथम खण्ड प्रस्तावना के रूप में, द्वितीय खण्ड तुलसी की प्रगीत एवं प्रबन्ध रचनाओं के स्वतन्त्र अध्ययन के रूप में तथा अन्तिम खण्ड उपसंहार एवं निष्कर्ष रूप में प्रस्तुत है। प्रस्तावना खण्ड में दो अध्याय हैं जिसके प्रथम अध्याय में प्रबन्ध काव्य की विस्तृत शास्त्रीय विवेचना प्रस्तुत की गई है। द्वितीय अध्याय में प्रगीत काव्य के विविध रूपों एवं प्रकारों पर विस्तृत चर्चा की गई है। तृतीय अध्याय में तुलसी के लघु प्रबन्धों के वर्ण्य विषय, भाषा, छन्द, रस, अलंकार आदि की विवेचना की गई है। चतुर्थ अध्याय में मानस के साहित्यिक स्वरूप का मूल्यांकन किया गया है। इस अध्ययन के निष्कर्ष में डॉ० बाजपेयी ने स्वीकार किया है कि इतिहासोद्भूत कथा का आश्रय ग्रहण करके तुलसी ने अपनी कथा संवेदना में नाटकीय अन्वित का पूरा पूरा ध्यान रखा है। उन्होंने

मानस निर्माण के प्रमुख चार उद्देश्य स्वीकार किए हैं। (१) आदर्श परिवार चित्रित करने के लिए (२) आदर्श राज्य स्थापित करने हेतु (३) राम में परम ब्रह्म की अवतारणा हेत (४) राम भक्ति के प्रचार हेतु। पंचम अध्याय मानस के काव्य विषय तथा उनके सांस्कृतिक, दार्शनिक तथा सामाजिक आदर्शों का विवेचन प्रस्तुत करता है। अध्याय षष्ट में तुलसी की चरित्र सुषमा का मूल्यांकन किया गया है। अध्याय सप्तम मानस के कला पक्ष से सम्बद्ध है। अष्टम अध्याय में तुलसी के प्रगीत काव्य का अध्ययन शास्त्रीय आधार पर किया गया है। इसके अन्तर्गत श्रीकृष्ण गीतावली, गीतावली, विनयपत्रिका में वर्णित तुलसी के दैन्य, विश्वास, आत्मभर्त्सना, निर्वेद, हर्ष, गर्व, उपालंभ, मोह, चिन्ता, विषाद आदि अनेक भावों का उत्कर्षापकर्ष चित्रित किया गया है।

अध्याय नवम् में प्रगीत काव्यों के कलापक्ष का विवेचन किया गया है। शोध कर्त्ता के विचार से तुलसी ने प्रगीतों में संस्कृतनिष्ट ब्रजभाषा के माधुर्य से युक्त भाषा का प्रयोग किया है। अन्तिम अध्याय में तुलसी के प्रबन्ध एवं प्रगीत के तुलनात्मक अध्ययन का निष्कर्ष दिया गया है। इस अध्याय में पुनः शोधकर्ता ने तुलनात्मक निष्कर्ष न देकर अलग-अलग काव्यों का विवेचन मात्र कर दिया है। अन्त में उन्होंने स्वीकार किया है तीन मंगल काव्यों में लोकाचार एवं परिवार की आदर्श झाँकी प्रस्तुत की है। सम्पूर्ण शोध प्रबन्ध को अध्ययन करने यह विदित होता है कि शोधकर्ता ने आलोच्य विषय की गंभीरता पूर्वक आलोचना नहीं की। वे विषय सीमाओं से बहक गए हैं और इस विषयपर दूसरे शोधकर्ता के लिए शोध करनेकी आवश्यकता अब पुनः प्रतीत होरही है। कई अध्यायों में बहुतसी अन्यथा लोचित सामग्री का बाहुल्य एक सुरुचिपूर्ण पाठक को खटकता है।

रीतिकालीन अलंकारिक स्वर में तुलसी की अलंकार योजना

(डा. चन्द्रभान तिवारी, १९६५)

यह शोध प्रबंध डॉ० चन्द्रभान तिवारी द्वारा सागर विश्व-विद्यालय की पी-एच० डी० उपाधि हेतु सन् १९६५ में प्रेषित किया गया था। यह अभी तक अप्रकाशित है। इसमें सम्पूर्ण सामग्री १४ अध्यायों में संजोई गई है। यद्यपि इस विषय को लेकर एक शोध प्रबंध दिल्ली विश्वविद्यालय में प्रेषित किया जा चुका है परन्तु इस ग्रंथ के प्रथम अध्याय में डॉ० तिवारी ने विषय की समीचीनता को सिद्ध करने के लिए पूर्व प्रस्तुत शोध एवं समीक्षा में तुलसी की अलंकार योजना पर सम्यक विवेचना का अभाव दिखलाया है और डॉ० नरेन्द्र कुमार के शोध प्रबंध में आठ अभावों की ओर संकेत कर उसी की पूर्ति हेतु अपना लक्ष्य निर्धारित किया है। अलंकारों का अध्ययन केवल मानस तक ही सीमित न होकर उनकी विभिन्न कृतियों तक फैला हुआ है। द्वितीय अध्याय में भक्तिकालीन अलंकारिक स्वर एवं तुलसी का विवेचन प्रस्तुत किया गया है। इसमें भक्ति कालीन विभिन्न धाराओं के अन्तर्गत तुलसी के अलंकार विधान को परखा गया है। इस सम्पूर्ण विवेचना के आधार पर डॉ० तिवारी ने स्वीकार किया है कि यद्यपि भक्तिकाल की सीमा में अलंकरण की प्रवृत्ति वहुत मुखर हो उठी थी फिर भी इस प्रमुख काल के प्रमुख भक्त कवियों ने भाव की उपेक्षा करके वर्णन शैली की प्रधानता में कमी नहीं की। तृतीय अध्याय में

अलंकारों के स्वरूप एवं प्रभेदों का सैद्धांतिक विवेचन प्रस्तुत किया गया है। इसमें अलंकार के ऐतिहासिक अनुक्रम में विभिन्न अर्थ देकर उनके वर्गीकरण के आधारों का मौलिक, शास्त्रीय एवं मनोवैज्ञानिक परीक्षण प्रस्तुत किया है। चतुर्थ अध्याय में तुलसी साहित्य में शब्दालंकार नियोजन पर विचार किया गया है। शब्दालंकार में प्रमुख रूप से तुलसी के काव्य में अनुप्रास, यमक, वीप्सा आदि ही उन्हें अधिक लोक प्रिय दीख पड़े हैं। इस विवेचना में शोधकर्ता ने अनालोचित एवं अन्यथालोचित अलंकारों के प्रति यत्र तत्र निर्देश भी दिए हैं।

पंचम अध्याय में साम्यमूलक प्रमुख अलंकारों का तुलसी साहित्य के संदर्भ में परीक्षण किया गया है। इसमें उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा तीन अलंकारों का विस्तृत सोदाहरण विवेचन किया गया है। इस विवेचना के आधार पर उन्होंने स्वीकार किया है कि तुलसी की उपमाएँ उनकी अलंकार योजना की उत्कृष्टता के महत्वपूर्ण सोपान हैं। उनका मत है कि उपमा की क्षेत्र में कवि की कल्पना जितनी परम्परायुक्त है उत्प्रेक्षा के क्षेत्र में उतनी ही परम्परा मुक्त। षष्ट अध्याय में तुलसी काव्य के इतर साम्यमूलक अलंकारों की योजना पर विचार किया गया है। इस प्रकरण में अनन्वय, स्मरण, सदेह, भ्रांतिमान, उल्लेख, अपन्हुति, तुल्योभिना, दीपक निदर्शन आदि विभिन्न अलंकारों की सोदाहरण गवेषणा प्रस्तुत की गई है। सप्तम अध्याय तुलसी की कृतियों में वैषम्यमूलक अलंकार नियोजन से परिचित कराता है। इसके अंतर्गत विरोधाभास, विभावना, विशेषोक्ति, असंगति, विशेष आदि अलंकारों की परिभाषा और उपर्युक्त विवेचना तथा शुद्ध अलङ्कारों से पुष्टि प्रदान की गई है। अष्टम अध्याय में तुलसी साहित्य में शृंखलामूलक अलंकार नियोजना की खोज की गई है। उनका मत है कि तुलसी ने ऐसे अलंकारों

का उपयोग बहुत ही कम किया है और धर्म दर्शन के जटिल सिद्धांतों को विवेचित करने के लिये ही इनका प्रयोग किया है। अध्याय नवम् न्यायमूलक अलंकारों से सम्बन्धित है। दशम अध्याय में चमत्कारमूलक अलंकारों की कसौटी में तुलसी की कृतियों का विशिष्ट रूप से मूल्यांकन प्रस्तुत किया गया है। डॉ० तिवारी ने इन नव्य अलंकारों को सर्वप्रथम आलोचित करके तुलसी के काव्य को परीक्षित किया है। इन अलंकारों में अर्थ चित्र, शब्द चित्र, बंध चित्र, का विशेष रूप से उल्लेख है। बन्धों को डॉ० तिवारी ने पहले-पहल ही आलोचित करके उसकी आकृतियों को परिश्रम करके प्रस्तुत किया है। इन वन्धों में प्रमुख रूप से किरीट वन्ध, मयूर वन्ध, सीप वंध, नाग वंध, खड्ग वंध, आदि का विशिष्ट रूप से सचित्र एवं सोदाहरण विवेचन किया है। इसमें डॉ० तिवारी का मौलिक गवेषण स्वीकार किया जा सकता है। डा० साहब का मत है कि तुलसीने इन इन वन्धों को सप्रयास निर्माण नही किया वरन घुनाक्षर न्याय से अपने आप वे निर्मित हो गये हैं। एकादश अध्याय अवशिष्ट अलंकारों के विधान पर दृष्टिपात करता है। इस विवेचना के आधार पर उन्होंने स्वीकार किया है कि तुलसी की दृष्टि चमत्कार की ओर कम गई है।

द्वादश अध्याय रस और अलंकारों से सम्बद्ध है। पर्याप्त गवेषणा के बाद डॉ० साहब ने स्वीकार किया है कि तुलसी का अंगीरस भक्ति ही है। रसोद्रेक के सम्बन्ध में उनका कथन है कि तुलसी के अलंकार रस-निष्पत्ति में किसी प्रकार का व्यवधान उपस्थित नहीं करते हैं। तेरहवें अध्याय में भक्तिकाल के अन्य कवियों से तुलसी के अलंकार के विधान की तुलना प्रस्तुत की गई है। इस तुलनात्मक अध्ययन में तुलसी के समकक्ष डॉ० तिवारी ने सुन्दरदास को ही माना है। चौदहवां अध्याय प्रस्तुत

शोध का निष्कर्ष प्रेषित करने में समर्थ है। इसमें उन्होंने स्वीकार किया है कि तुलसी साहित्य की अलंकार योजना का न तो समग्र रूप से अंकन ही हुआ है और न मूल्यांकन ही। अंत में इस प्रमुख उद्देश्य की पूर्ति करके उनके युग के कवियों के मध्य तुलसी के स्थान को निर्धारित करने का प्रयास किया गया है। निश्चय में समग्र रूप से यह शोध प्रबन्ध तुलसी के अलंकार योजना के विशिष्ट पक्ष को प्रस्तुत करने में समर्थ है जिसकी ओर अन्य समीक्षकों एवं शोधकर्ताओं का ध्यान ही नहीं गया था।

रामचरितमानस का तत्त्व दर्शन

(डॉ० श्रीषकुमार १९६६)

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध डॉ० श्रीषकुमार द्वारा पी-एच० डी० उपाधि हेतु जबलपुर विश्वविद्यालय के तत्वावधान में प्रेषित किया गया है। इसका प्रकाशन लोकचेतना प्रकाशन से १९६६ में हो गया है। डॉ० कुमार ने प्रस्तुत शोध प्रबंध की उपादेयता को सिद्ध करने के लिये यह स्वीकार किया है कि पूर्व के तीन शोध-प्रबन्ध तुलसी के दर्शन तत्व को स्पष्ट करने में सफल नहीं हो सके। उनका कहना है कि आलोचकों ने मत पहले से स्थिर कर लिये थे और इन्होंने अपने शोध प्रबन्ध में उन मन्तव्यों की

पुष्टि मात्र की है। ऐसे शोधकर्त्ताओं ने अपनी ज्ञान लिप्सा तो पूरी करली परन्तु कवि का मूल तथ्य एवं अभिप्रेत यहां अविख्यात ही रह गया। इस शोध प्रबन्ध में डॉ० साहब ने मानस के अंतःसाक्ष्य के आधार पर तुलसी की सारी दार्शनिक मान्यताओं को एक निश्चित सैद्धांतिक पद्धति के रूप में लक्ष्य किया है और इस प्रकार मानस की दोहे चौपाइयों के आधार पर ही तुलसी की दार्शनिक दृष्टि का सुनियोजित आकलन इस प्रबन्ध का प्रथम और महत्वपूर्ण लक्ष्य बन गया है। प्रस्तुत ग्रंथ में कुल पाँच अध्यायों में सम्पूर्ण सामग्री को संजोया गया है। प्रथम अध्याय विषय प्रवेश में दार्शनिक पृष्ठभूमि की अत्यन्त संक्षिप्त परन्तु अत्यन्त ठोस व्याख्या प्रस्तुत की गई है। द्वितीय अध्याय में ब्रह्म प्रमुख सात गुणों की कसौटी में तुलसी के राम की परख की गई है। अंत में डॉ० कुमार ने स्वीकार किया है कि तुलसी विवर्तवाद के मत से साम्य रखते हैं। चतुर्थ अध्याय जीव का सांग विवेचन प्रस्तुत करता है। अन्तिम अध्याय मोक्ष तथा मोक्ष के साधनों का विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत करता है। इस प्रकार से प्रस्तुत शोध प्रबन्ध मानस को ही अपनी गवेषणा का विषय बनाकर उसके तत्वदर्शन को अत्यन्त संक्षिप्त परन्तु बहुत सारगर्भित रूप में प्रेषित करने में समर्थ है।

—:०:—

गोस्वामी तुलसीदास सम्बन्धी शोधों एवं समीक्षाओं का अनुशीलन

(डॉ० वीरेन्द्रपाल श्रीवास्तव १९६७)

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध इस पुस्तक के लेखक द्वारा सन् १९६७ में पी-एच० डी० उपाधि हेतु सागर विश्वविद्यालय के तत्वावधान में प्रेषित किया गया। यह ग्रन्थ अभी तक अप्रकाशित है। इसमें कुल तेरह अध्याय हैं। इसमें तुलसी की समीक्षा एवं शोध के लिये प्रथक प्रथक दो खण्ड किये गये हैं जिससे दोनों तरह की कृतियों के प्रति सही माप किया जा सके। प्रथम खण्ड तुलसी विषयक समीक्षा के ऐतिहासिक विकास से सम्बन्धित है। इसके अंतर्गत चार अध्यायों की योजना की गई है। प्रथम अध्याय में उन्नीसवीं शताब्दी में तुलसी सम्बन्धी अध्ययन को शोध का विषय बताया गया है। इस काल में अधिकांश अध्ययन कृत लेखन और तुलसी सम्बन्धी उल्लेखों से परिपूर्ण है। इस युग में डॉ० ग्रियर्सन का कार्य युगान्तरकारी प्रतीत हुआ है। इसमें हमें किसी प्रकार की आपत्ति प्रतीत नहीं होती कि पाश्चात्य समीक्षकों का कार्य मौलिक महत्व का था क्योंकि उन्होंने ने ही तुलसी को मध्य युग का सर्वश्रेष्ठ कवि घोषित किया था साथ ही उसे भारतीय धर्म परम्परा, दर्शन-चिन्तन और सामाजिक भूमिका से इस प्रकार जोड़ दिया कि वे राष्ट्रीय महत्व के कवि और नेता बन गये। द्वितीय अध्याय में तुलसी सम्बन्धी शुक्ल पूर्व समीक्षा के अंतर्गत उनके समीक्षात्मक रूप का दिग्दर्शन कराया गया है। इस युग के सर्वश्रेष्ठ समीक्षक

हमें मिश्रबन्धु ही प्रतीत होते हैं जिनके 'हिन्दी नवरत्न' को विशेष रूप से अध्ययन का विषय बनाया गया है। तृतीय अध्याय में आचार्य शुक्ल और उनके समीक्षकों को विवेचना का विषय बनाया गया है। इसे हमने तुलसी समीक्षा का स्वर्ण-युग माना है। इसमें द्विवेदी युग की परम्परा का विस्तार मिलता है। इस युग में तुलसी समीक्षा के चार बड़े स्तंभ मिलते हैं (१) पं० रामचन्द्र शुक्ल (२) पं० रामनरेश त्रिपाठी ३) बाबू श्यामसुन्दर दास (४) श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला। चतुर्थ अध्याय में शुक्लोत्तर समीक्षा के अन्तर्गत उन सभी देशी विदेशी समीक्षकों को अध्ययन का विषय बनाया गया है जिन्होंने शुक्लयुग के बाद तुलसी समीक्षाएँ की हैं। इस युग में समीक्षा की भरमार है। अस्तु अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से इनको हमने चार भागों में विभाजित कर दिया है। (१) विशुद्ध साहित्य समीक्षक (२) धार्मिक समीक्षक (३) शोधी समीक्षक (४) मिश्र समीक्षक। इस युग में शुक्ल परम्परा के अनुयायी एवं आलोचक मिलते हैं। इनमें प्रमुख रूप से वरान्निकोव, डॉ० रामविलास शर्मा, आचार्य चन्द्रबली पांडेय, डॉ० श्रीकृष्णलाल, डा० भगीरथ मिश्र एवं डॉ० रामरतन भटनागर ही सर्वश्रेष्ठ समीक्षक के रूप में आते हैं।

द्वितीय खण्ड शोध से सम्बन्ध रखता है। इसके अंतर्गत विभिन्न विषयों पर किये गये शोधों को उन्ही के नाम से अभिहित करते हुए आठ अध्यायों में सामग्री संजोई गई है। जिस विषय में सर्वप्रथम शोध किया गया है उसे इस खण्ड का प्रथम अध्याय स्वीकार कर तद्-विषयक शोधकर्त्ताओं को इसी के अन्दर अध्ययन कर लिया गया है। पंचम अध्याय में गोस्वामी तुलसीदास के धर्म-दर्शन सम्बन्धी शोधों का अध्ययन किया गया है।

इसमें डॉ० कारपेण्टर, डॉ० बल्देवप्रसाद तथा डॉ० रामदत्त भारद्वाज के शोध-ग्रन्थों का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। डॉ० कारपेण्टर का शोध-ग्रन्थ 'थियोलॉजी ऑफ तुलसीदास' अप्राप्य है इसलिये इसकी महत्ता को तुलसी के धर्म दर्शन सम्बन्धी अध्ययन में स्वीकार करके इसके अनुवाद का संकेत किया गया है। इसका अनुवाद यद्यपि इस कृति के लेखक ने तैयार कर लिया है और उसके प्रकाशन की घड़ियां ढूंढ़ी जा रही हैं। षष्ट अध्याय में काव्य कला सम्बन्धी शोधों का विवेचन किया गया है। इसमें सर्वश्री डॉ० हरिहरनाथ हुक्कू, डॉ० श्रीधर सिंह, डॉ० भाग्यवतीसिंह, डॉ. राजकुमार पांडेय, डाक्टर माताप्रसाद गुप्त, तथा डॉ० चन्द्रभान तिवारी के शोध प्रबन्धों को अध्ययन का विषय बनाया गया है। अध्याय सप्तम गोस्वामी तुलसीदास की जीवनी, कृतित्व एवं व्यक्तित्व सम्बन्धी शोधों का अध्ययन प्रस्तुत करता है। इसमें डॉ० माताप्रसाद गुप्त, डॉ० रामदत्त भारद्वाज तथा राजाराम रस्तोगी द्वारा प्रस्तुत सामग्री का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुतकर रचना-क्रम पर एक मात्र शोधकर्त्ता डॉ० सुश्री वोदवील के शोध प्रबन्ध को भी इसी स्थल में विवेचित किया गया है। अध्याय अष्टम् तुलसी के सांस्कृतिक पक्षों के शोध से सम्बद्ध है जिसमें डॉ० राजपति दीक्षित, डॉ० रघुराजशरण के शोध ग्रन्थों को अध्ययन का विषय बनाया गया है। नवम् अध्याय में तुलसी के भाषा सम्बन्धी शोधों का अनुशीलन प्रस्तुत किया गया है इसमें डॉ० देवकीनन्दन श्रीवास्तव के शोध ग्रन्थ को ही सर्वाधिक महत्व का ग्रन्थ स्वीकार किया गया है।

अध्याय दशम गोस्वामी तुलसीदास के दार्शनिक पक्षों के शोधों से सम्बन्धित है। इसमें डॉ० उदयभानुसिंह, डॉ० गुप्त, तथा डॉ० रस्तोगी के द्वारा प्रस्तुत शोधों पर प्रकाश डाला गया

...तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करते हुए इन क्षेत्रों में नई संभावनों की ओर आंगुलि निर्देश किया गया है। इस प्रकार त्रयोदश अध्याय में इस शोध प्रबन्ध का समापन हो जाता है। इस प्रकार से प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में तुलसी संबंधी समीक्षा एवं शोधों को एक स्थान में दे दिया गया है।

डॉ० राम स्वरूप आर्य, बिजनौर
की स्मृति में सादर भेंट–
हरप्यारी देवी, चन्द्रप्रकाश आर्य
संतोष कुमारी, रवि प्रकाश आर्य

है। अध्याय एकादश में तुलसी की समाजनीति एवं राष्ट्रनीति सम्बन्धी शोधों का अनुशीलन प्रस्तुत किया गया है। इसके अन्तर्गत डा० महेशप्रसाद चतुर्वेदी, डा० राजपति दीक्षित तथा डॉ० रस्तोगी द्वारा प्रस्तुत शोधों को परीक्षित किया गया है। इस खण्ड के अंतिम अध्याय में गोस्वामी तुलसीदास के मनोवैज्ञानिक शोधों का अनुशीलन किया गया है। इस सम्बन्ध में डॉ० अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी के शोध प्रबन्ध को सर्वाधिक महत्व का ग्रन्थ स्वीकार किया गया है। इस सम्बन्धके अध्यायों में सर्वप्रथम तत्सम्बन्धित शोध की सीमाओं तथा प्रकृतियों पर सामूहिक रूप से विचार प्रगट किए गये हैं बाद में तत्सम्बन्धित शोध प्रबन्ध की व्याख्या की गई है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के तृतीय खन्ड में सम्पूर्ण अध्ययन एवं गवेषणा पर महत्वपूर्ण निष्कर्ष प्रस्तुत किये गये हैं। इस सम्पूर्ण अध्ययन में शोधकर्त्ता को यह बात विशेष रूप से खली है कि अधिकांश शोध ग्रन्थों में विषयों की पुनरावृत्ति एवं पिष्टपेषण किया गया है तथा कुछ विषयों पर कार्य तो किया गया है परन्तु उसकी सीमाओं का मूल्यांकन नहीं किया गया है। इसके साथ ही तुलसी के कुछ पक्ष पूर्णतः अछूते रह गये हैं इसीलिये इस अध्ययन में तुलसी सम्बन्धी समीक्षा एवं शोध की उपलब्धियों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करते हुए इन क्षेत्रों में नई संभावनों की ओर आंगुलि निर्देश किया गया है। इस प्रकार त्रयोदश अध्याय में इस शोध प्रबन्ध का समापन हो जाता है। इस प्रकार से प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में तुलसी संबंधी समीक्षा एवं शोधों को एक स्थान में दे दिया गया है।

मानस संघ द्वारा प्रकाशित पुस्तकें

१—तुलसी मुक्तावली (प्रथम किरण) (श्री शंभूप्रसाद बहुगुना, एम. ए. डिप. साई)	.८१
२—तुलसी मुक्तावली (द्वितीय किरण)	.७५
३—शबरी मङ्गल (श्री शम्भूप्रसाद बहुगुना)	.७५
४—शतपञ्च चौपाई (पं० विजयानन्द त्रिपाठी)	२.७५
५—मानस प्रसङ्ग "	३.५०
६—मानस व्याकरण "	२.००
७—मानस पञ्चतत्व "	.७५
८—महात्मा बाली (श्री सुदर्शनसिंह)	.३१
९—श्री भगवन्नाम संकीतन "	.१०
१०—जरठ जटायु "	.३१
११—देवर्षि नारद "	.३१
१२—जीवन निर्माण [कहानियां] "	.६२
१३—श्री हनुमान चालीसा सटीक "	.२०
१४—शत्रुघ्नकुमार की आत्मकथा "	३.००
१५—प्रभु आवत "	४.००
१६—मानस के अनुष्ठान "	.३५
१७—राक्षसराज "	२.००
१८—साधन सोपान "	.७५
१९—श्री रामचरित मानस में वेदान्त दर्शन (रायसाहब हीरालाल वर्मा)	१.२५

२०—स्व स्वरूप दर्शन (राय साहब हीरालाल वर्मा) १.००
२१—सब ग्रन्थन को रस ” १.२५
२२—श्री रामचरित मानस में मिथिला धाम
(श्री अवधकिशोरदास श्रीवैष्णव) .२५
२३—महाभागवत चरित [दूसरा भाग] १.००
२४ अनुरागी केवट (पं० रामरक्षित रामायणी) .४४
२५—श्री मानस सिद्धांत वेदान्त भूषण
श्री पं० रामकुमारदासजी रामायणी) २.५०
२६—धर्मरथ पं० रामकुमारदासजी रामायणी .७५
२७—मानस पारायण पूजन पद्धति ” .४४
२८—वाल्मीकि तुलसी भये [नाटक]
(श्री भगवानदास सफड़िया) .७५
२९—मानवता के चरण ” .५०
३०—मानसूकण (गोस्वामी महन्त राशनपुरी) १.००
३१—गूढ़ार्थ चन्द्रिका प्रथम खण्ड
(दण्डी स्वामी प्रज्ञानानन्दजी सरस्वती) ३.००
३२—द्वितीय खण्ड ” ३.००
३३—बान्धवेश महाराज रघुराजसिंह
(गुरु श्री रामप्यारे अग्निहोत्री) १.००
३४—रामवन दर्शिका .३०
३५—मेघदूत पंजरिका टीका ३.५०
३६—नवधा भक्ति (श्री फतेहबहादुर सक्सेना) .५०
३७—हनुमान साठिका (श्री बल्देवदासजी) .१५

मन्त्री— मानस सङ्घ, पो० रामवन (सतना)